आधुनिक हिन्दी साहित्यकार

लेखक :

प्रो० महेन्द्र रायजादा

अध्यक्ष : स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

श्री कल्याण राजकीय महाविद्यालय, सीकर

देवनागर प्रकाशन

इलाहाबाद बैंक के सामने,

चौड़ा रास्ता, जयपुर-३.

१ जयशंकर प्रसाद के काव्य का क्रमिक विकास

श्री जयशंकर 'प्रसाद' हिन्दी साहित्य के सर्वतोन्मुखी प्रतिभावान कलाकार हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध आदि में अपनी अभूतपूर्व कला एवं प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। वे हिन्दी की छायावादी काव्य-धारा के प्रवर्तक कवि हैं। 'प्रसाद' ने जिस नूतन काव्यधारा का प्रवर्तन किया, उसे स्वच्छंदतावादी, रोमांटिक अथवा छायावादी-रहस्यवादी काव्यधारा कहा जाता है। द्विवेदी युगीन शुष्क नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध क्रान्ति का स्वर लेकर छायावाद का जन्म हुआ था। अतः प्रसाद जी ने परम्परागत मान्यताओं की उपेक्षा कर प्रेम और सौंदर्य के गीत नवीन शैली में लिखे, जिसमें स्थूल सौंदर्य के स्थान पर स्वानुभूति से परिपूर्ण भावुकता एवं लाक्षणिकता का प्राधान्य है। उनकी काव्य-वाटिका का शृंगार सूक्ष्म कल्पना के बहुरंगी सुमनों की अलौकिक रूप मधुरिमा से हुआ है। वास्तव में प्रसादजी की कविता ने अनुपम रूप चित्रण, अभिनव कल्पना, रसमयी काव्य द्वारा आधुनिक युग को एक नई दिशा प्रदान की है।

'प्रसादजी' आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विभूति हैं जिनके काव्य ने आधुनिक हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ाया है। उन्होंने खड़ी बोली के काव्य को नई विभा से दीप्त किया। उन्होंने छायावादी काव्य-धारा का पोषण कर उसे शालीनता, गंभीरता एवं प्रौढ़ता प्रदान की। अपनी विशिष्ट कल्पना-शक्ति, नूतन अभिव्यक्ति एवं मौलिक प्रतीक विधान आदि के कारण प्रसाद जी सहजरूप से ही छायावादी कवियों में शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं। यद्यपि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मैथिलीशरण गुप्त तथा मुकुटधर पाण्डे को छायावादी काव्यधारा का प्रवर्तक कवि माना है। गुप्त जी की 'नक्षत्र-निपात' (१९७१ सं.) की कविता को छायावाद की प्रथम रचना माना है। ने 'सरस्वती' पत्रिका की फाइलें देखकर यह धारणा बनाई थी, किन्तु से प्रकाशित होने वाली तत्कालीन 'इन्दु' पत्रिका की फाइलों

था—(हिन्दी सा. का इतिहास पृ. ६४८) अतः शुक्ल जी की मान्यता के आधार पर भी प्रसाद छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक कवि सिद्ध होते हैं।

'प्रसादजी' की काव्य साधना के सम्पूर्ण काल को क्रमिक विकास की दृष्टि से निम्नांकित तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है:—

प्रथम काल— सन् १६०६ से सन् १६२२ तक का रचना काल। इसके अन्तर्गत 'कानन कुसुम' से लेकर 'झरना' तक की रचनाएँ आती हैं। इस काल में कवि ने प्रारम्भ में ब्रज फिर खड़ी बोली में अनेक प्रयोग किये तथा अपनी काव्य रचना का मार्ग निर्दिष्ट किया।

द्वितीय काल—सन् १६२३ से सन् १६३० तक का काल। इस काल में 'आँसू' और 'लहर' ये दो कवि की प्रौढ़ कृतियाँ आती हैं।

तृतीय काल—सन् १६३० से १६३७ तक का काल। इस काल की 'प्रसाद' की प्रौढ़तम रचना 'कामायनी' है।

प्रथम काल—'प्रसादजी' जिस समय हिन्दी काव्य क्षेत्र में आये, उस समय ब्रजभाषा की कीर्ति संस्थापित थी। अतः उनकी प्रारंभिक रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखी गई हैं, जिसका संकलन 'चित्राधार' में हुआ है। 'चित्राधार' का प्रथम संकलन सं. १६७५ में प्रकाशित हुआ था। 'चित्राधार' में गद्य, पद्य, चम्पू, कथा तथा नाटक आदि संकलित हैं। यह संकलन प्रसाद की बीस वर्ष तक की आयु की रचनाओं को समेटे हुए है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ आख्यानक शैली की हैं, जिन पर द्विवेदीजी का प्रभाव है, किन्तु शैली के चमत्कार तथा भाषा की छटा पर कवि 'प्रसाद' के व्यक्तित्व की छाप है।

'कानन कुसुम'—यह 'प्रसाद' द्वारा लिखी गई खड़ी बोली की कविताओं का प्रथम काव्य संग्रह है। बीस वर्ष की अवस्था के बाद प्रसाद ने खड़ी बोली को काव्य रचना का माध्यम बना लिया था तथा 'चित्र' उनकी खड़ी बोली की प्रथम रचना 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। प्रेम और प्रकृति के सम्बन्ध में कवि ने अपनी स्फुट रचनाएँ इसमें संकलित की हैं। 'भरत', 'शिल्प सौंदर्य' तथा 'वीरबालक' इसकी आख्यानक कविताएँ हैं। स्वयं कवि के शब्दों में, "इसमें रंगीन और सादे, सुगंध वाले और निर्गन्ध, मकरंद से भरे हुए, पराग में लिपटे हुए सभी प्रकार के कुसुम हैं।"

'करुणालय'—राजा हरिश्चन्द्र के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली एक पौराणिक घटना द्वारा कवि का लक्ष्य करुणा का प्रतिपादन करना है। हिन्दी का यह प्रथम भाव नाट्य है। इसमें गीतात्मकता के साथ नाटकीयता की पूर्ण रक्षा हुई है। यद्यपि डा विजयेन्द्र स्नातक इसे नाट्य शैली की लम्बी कविता मानते हैं, किन्तु वास्तव में यह एक गीति नाट्य है।

'महाराणा का महत्त्व'—एक ऐतिहासिक काव्य है। जून १६१४ में यह सर्वप्रथम 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ था। इसमें महाराणा प्रताप की वीरता का वर्णन है। इसमें राष्ट्र प्रेम की भावना निहित है। कवि का उद्देश्य महाराणा का महत्त्व एवं उनकी वीरता की स्थापित करना प्रतीत होता है। इक्कीस मात्रा के 'अरिल्ल' छंद का प्रयोग इस अतुकान्त कथा काव्य में किया गया है।

'प्रेम पथिक'—यह एक आख्यानक काव्य है। इसकी रचना कवि ने सर्व प्रथम ब्रजभाषा मे (सं. १६६६ में) की थी, किन्तु बाद में (सं. १६७० में) उसी को परिवर्तित एवं परिवर्द्धित कर खड़ी बोली में प्रस्तुत किया। कवि ने इसमें लाक्षणिक एव प्रतीक शैली मे प्रेम की गूढ़ व्याख्या की है तथा अपने प्रेम दर्शन की स्थापना की है। समस्त ससार कवि को सौंदर्य का सुधा सागर प्रतीत होता है। विश्व के कण-कण मे ईश्वर वर्तमान है। किसी व्यक्ति विशेष में अभिलाषाओं को केंद्रित करने से दुःख होना है। विश्व के कण-कण में अमित सौंदर्य है, मानव उस सौंदर्य सागर की एक बूंद मात्र है। प्रसाद ने इस काव्य में जगत और जीवन में जो समन्वय स्थापित किया है, उसमें दार्शनिक चिंतन के साथ उनकी आन्तरिक अनुभूति है। जीवन दर्शन की दृष्टि से यह कवि के विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। प्रकृति की अनेक वस्तुओं और रूपो मे उसी की सत्ता दिखलाई देती है। प्रेम यज्ञ मे स्वार्थ और आंकाक्षाओं को हवन करना होगा। रूप जन्य प्रेम केवल मोह है। प्रसाद का प्रेम-दर्शन अनेक दर्शनों से मिल कर अत्यन्त उच्च भावभूमि पर पहुँचता है।

'झरना'—यह छायावादी काव्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। गीति काव्य की एक सुन्दर कृति है। इसमें कवि की ४८ कविताएँ सगृहीत हैं। इसका संशोधित एवं परिवर्द्धित सस्करण सन् १६१८ में प्रकाशित हुआ था। छायावाद के सभी तत्व इस संग्रह की कविताओं मे विद्यमान हैं। 'झरना' वास्तव में भावों का निर्झर है, जो कवि के अन्तस्थल की गुहाओं से प्रेम रस का प्रवाह लिए निसृत हुआ है। छायावादी प्रतीक पद्धति, सूक्ष्म अनुभूति, भावों की मनोरमता, अभिव्यक्ति की लाक्षणिकता आदि विशेषताएँ इसकी रचनाओं में विद्यमान हैं। 'किरण', 'प्रत्याशा', स्वप्न लोक',

'दर्शना', 'चिन्तन' आदि प्रेम और प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ इनमें संकलित हैं।

'द्वितीय चरण'—इस काल के अन्तर्गत 'प्रसाद' की दो प्रौढ़ कृतियाँ 'आँसू' और 'लहर' रची गई हैं।

'आँसू'—यह छायावादी काव्य की बहु-चर्चित एवं बहु प्रशंसित काव्य कृति है। सर्वप्रथम यह साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी से सं. १९८२ में प्रकाशित हुई थी। इसके प्रथम संस्करण के रूप में 'आँसू' एक लौकिक विरहपरक काव्य मात्र था, किन्तु आठ वर्ष बाद जब इसका परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ, तब कवि ने इसमें कथानक को लौकिकता के साथ सार्वभौम रूप प्रदान किया। कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि प्रसादजी 'आँसू' को 'कामायनी' महाकाव्य के एक प्रमुख सर्ग के रूप में लिखना चाहते थे। द्वितीय संस्करण में १९० आनन्द छन्द हैं। आनंद २८ मात्रा का एक सम छंद है, जिसमें १४-१४ पर विराम होता है।

'आँसू' विरहमय हिंदी-काव्य की शृंखला (परंपरा) में एक नूतन कड़ी है। यह एक ऐसा आत्मपरक विरह काव्य है जो एक ओर कवि की आन्तरिक व्यथा को अभिव्यक्त करता है तो दूसरी ओर मानव मात्र के हृदय के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। व्यष्टि की पीड़ा समष्टि की पीड़ा बन जाती है। इस काव्य कृति का समूचा भव्य भाव भवन निम्न लिखित पंक्तियों पर आधारित है:—

"जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई।।"

'आँसू' को कुछ आलोचक मानवीय विरह काव्य मानते हैं तथा कुछ आलोचक (आचार्य शुक्लजी) अज्ञात प्रियतम के प्रति बहाये गये 'आँसू' मानकर इसे आध्यात्मिक अथवा रहस्यवादी रचना मानते हैं। वास्तव में 'आँसू' की कथा को आद्योपान्त पढ़ने पर ज्ञात होता है कि इसकी रचना योजनाबद्ध रूप से मानव की विरह वेदना अभिव्यक्त करने के लिए हुई थी तथा इसका आलम्बन इसी लोक का कोई मानव है, न कि मानवेतर अलौकिक अज्ञात प्रियतम। किन्तु कुछ आलोचकों ने इस काव्य कृति की कतिपय पंक्तियों को लेकर इसे रहस्यवादी अथवा दार्शनिक रचना सिद्ध करने का भी प्रयास किया है। 'आँसू' प्रसाद की एक गंभीर रचना है, जिसमें उनके व्यक्तिगत जीवन की कुछ झलक भी मिलती है, किन्तु अन्तिम अंश में विश्व मंगल की भावना से युक्त हो कवि 'चिर दग्ध दुखी वसुधा' के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता है। 'आँसू' छायावादी काव्यधारा की एक प्रतिनिधि एवं श्रेष्ठ-कृति है। उदात्त कल्पना, आत्मपरक सूक्ष्म भावों का प्रकाशन होने के साथ कलापक्ष की दृष्टि से भी वह एक अत्यन्त प्रौढ़ एवं परिष्कृत रचना है।

'लहर'—यह छोटी तथा चार बड़ी कविताएं संगृहीत हैं। सन् १६३० से लेकर १६३५ तक की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित 'प्रसाद' की रचनाएं सन् १६३५ में 'लहर' काव्य संग्रह के रूप में भारती भण्डार, प्रयाग से प्रकाशित हुई थीं।

'लहर' के गीत विविध विषयों पर लिखे गये हैं जो विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं। इस संग्रह की रचनाओं को हम आत्म-परक, रहस्यवादी, लोकपरक तथा ऐतिहासिक इन चार रूपों में देख सकते हैं। इस पुस्तक की प्रथम रचना 'लहर' इसके काव्य धरातल का निर्देश करती है। प्रस्तुत कविता में जीवन की लहर से याचना की गई है कि वह केवल वैभव से युक्त कमल वन में न भूली रहे, अपितु तट के शुष्क अधरों को प्यार की पुलक से भरकर चूमले। लहर के गीतों की भावभूमि अत्यन्त विस्तृत है। रहस्यवादी आत्मपरक गीतों में निम्नांकित गीत बहुत प्रसिद्ध है:-

"ले चल वहाँ भुलावा देकर
मेरे नाविक ! धीरे धीरे।"

इस गीत में कवि की श्रांत आत्मा उस लोक में प्रयाण करना चाहती है, जहाँ प्रेम की निश्चल कथा हो और जहाँ घनी ज्योति बिखर रही हो। लहर का एक अन्य उद्बोधन गीत अपने ढंग का अनूठा है। इसकी छायावादी शब्दावली अत्यन्त मधुर एवं श्लिष्ट है, जो काव्य सौंदर्य के साथ ही संगीत की मधुरिमा से युक्त है -

"बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट में डुबो रही ताराघट ऊषा नागरी।"

'लहर' में संग्रहीत 'अशोक की चिन्ता' शीर्षक रचना अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। इसमें कवि बौद्ध-दर्शन से प्रभावित हो करुणा की धारा प्रवाहित कर जन जीवन को सुखी बनाने की कामना करता है। 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण,' 'पेशाली की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' शीर्षक रचनाएं मुक्तछंद में लिखी गई हैं। प्रथम दोनों रचनाओं का आधार राष्ट्रीय भावना एवं ऐतिहासिकता को लिए हुए है। इन दोनों रचनाओं को पढ़ने पर ज्ञात होता है कि कविवर 'प्रसाद' राष्ट्र का उद्बोधन करते हुए, राष्ट्रीयता का अमर सन्देश अनुपम ढंग से दे रहे हैं। 'लहर' की अन्तिम रचना 'प्रलय की छाया' सन् १६३१ में 'हंस' में प्रकाशित हुई थी। यह रचना ऐतिहासिक आधार पर लिखी गई स्वच्छंद से परिपूर्ण एक मनोवैज्ञानिक रचना है।

तृतीय काल—इस काल में 'प्रसाद' जी की प्रौढ़तम एवं सर्वश्रेष्ठ कृति 'कामायनी' लिखी गई। निःसन्देह 'कामायनी' प्रसाद के कवि जीवन की चरम सिद्धि

चरित्र है और अन्त में मनु उसी के सम्पर्क से सन्तोष पाता है एवं आनन्द की उपलब्धि करता है। बुद्धि जब हृदय से समन्वित रहती है तो कल्याणकारी होती है। मानव मनुष्य का प्रतीक है, वह मन से मनन शीलता, श्रद्धा से उदात्तभाव और इड़ा से बुद्धितत्व ग्रहण कर पूर्णता को प्राप्त होता है। श्रद्धा और इड़ा नारी के दो रूप हैं, एक हृदय की अधिष्ठात्री है और दूसरी बुद्धि का प्रतिनिधित्व करने वाली। मनु को श्रद्धा का समर्पण भारतीय संस्कृति के अनुरूप है जो दया, त्याग, ममता और करुणा की देवी है। निःसन्देह श्रद्धा के समान भव्य नारी चरित्र कदाचित ही किसी साहित्य में मिलेगा। लज्जा सर्ग में लज्जा (पात्री) नारी (श्रद्धा) से कहती है:—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में,
पियूष स्रोत ही बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।"

पुरुष पौरुष का प्रतीक है, तो नारी कोमलता की देवी है जो पुरुष के जीवन में निर्मल स्रोत बनकर सदैव जीवन पथ को सरल, सरस और मंगलमय बनाये रखती है। इसी कारण प्रसाद ने नारी को लज्जा द्वारा यह कहलवाया है कि आँसुओं से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रख कर, स्मित रेखा से संधि-पत्र लिखना होगा:-

"आँसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से, संधि-पत्र लिखना होगा।"

'कामायनी' में व्यक्तिगत सुख से ऊपर उठकर उदात्त दृष्टिकोण को अपनाने की भी बात कही गई है। श्रद्धा कहती है:—

"औरों को हँसते देखो, मनु हँसो और सुख पावो।
अपने सुख को विस्तृत करलो, सबको सुखी बनाओ।।"

इस प्रकार कवि 'प्रसाद' 'सर्वेभवन्तु-सुखेन:' का अमर संदेश देते हैं।

उपसंहार—'प्रसाद' के कवि व्यक्तित्व का निर्माण क्रमिक विकास के रूप में हुआ है। वे क्रियाशील कलाकार हैं, उन्होंने उत्तरोत्तर अपनी प्रतिभा का विकास किया है। 'चित्राधार' से लेकर 'कामायनी' तक क्रमशः कवि अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहा है तथा उसका प्रत्येक चरण नवीन कला के विकास का द्योतक है। 'चित्राधार' की रचनाएं 'रसाल', 'चन्द्रोदय' आदि प्राचीन रीतिकालीन परंपरा से प्रभावित जान पड़ती है, किन्तु कवि निरंतर किसी आदर्श की खोज में लीन है। आख्यानक कविताएं भी कालिदास आदि की छाया लेकर लिखी गई हैं। पर 'विसर्जन', 'नीरव प्रेम' आदि रचनाएं नई दिशा की सूचक हैं, इन कृतियों में कवि की अनुभूति में दृढ़ता है तथा क्षेत्र का विस्तार भी लक्षित होता है। 'कानन कुसुम' का अपने व्यक्तित्व के नव निर्माण में लीन है। कवि नूतन भाषा एवं नव छंदों का

नये भावों के प्रकाशन में स्वच्छन्द रूप से प्रयोग करता है। आख्यानक कविताओं में विशेष रूप से 'प्रेम पथिक', 'महाराणा का महत्व' तथा 'करुणालय' में कवि ने अनेक विस्तृत प्रयोग किये हैं। 'प्रेम पथिक' में प्रसाद का प्रेम दर्शन और जीवन सिद्धान्त विकसित एवं प्रौढ़ रूप में प्रकट हुआ है। लगता है कवि ने भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन कर, चिन्तन और मनन कर अपना स्वतंत्र दर्शन स्थापित किया है, जिसकी चरम परिणति 'कामायनी' महाकाव्य में जाकर हुई है। 'आंसू' और 'लहर' कवि के क्रमिक विकास की प्रौढ़ कृतियाँ हैं। 'आंसू' का कवि के क्रमिक काव्य विकास में विशेष महत्व है। 'लहर' में काव्य और दर्शन का अनूठा सामञ्जस्य इसके गीतों की अपनी विशेषता है।

'कामायनी' में जाकर कवि 'प्रसाद' के व्यक्तित्व का चरम विकास हुआ है। कवि की प्रारंभिक कृतियों में जीवन चिन्तन एवं दर्शन की रेखाएँ अंकुरित हुई हैं। वे 'कामायनी' में पल्लवित एवं पुष्पित हो पूर्ण विकास को प्राप्त होती हैं। 'प्रेम-पथिक' के कवि ने जिस 'शिव समष्टि' की चर्चा की थी, वह 'कामायनी' में पूर्ण विकसित हो शैव दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन तथा आनन्द की पूर्ण प्रतिष्ठा करने में समर्थ होता है। प्रारंभ से ही कवि ने वैयक्तिक भावनाओं का उदात्तीकरण किया है। शनैः शनैः निर्वैयक्तिक पक्ष मुखरित हुआ है और कवि चिन्तन, मनन द्वारा समरसता तक पहुँचता है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से 'कामायनी' अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। प्रसाद मूलतः दार्शनिक कलाकार हैं। पर उनका काव्य युग चेतना से भी अनुप्राणित है। अतः आज के बुद्धिवाद, भौतिकवाद तथा विज्ञान-वाद से त्रस्त मानवता को श्रद्धाजन्य विश्वास की कल्याणकारी एवं मंगलकारी शक्ति का रूप भी कवि ने दर्शाया है।

२ नाटककार 'प्रसाद

नवजागरण की वेला में स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' का उदय एक प्रति
मार्तण्ड के समान हुआ। उनकी प्रतिभा का प्रखर प्रकाश प्राप्त कर हिन्दी साहि
की विभिन्न विधाएं जगमगा उठीं। काव्य के क्षेत्र में वे युगान्तरकारी कवि माने ज
हैं। कथा साहित्य के क्षेत्र में वे एक श्रेष्ठ कहानीकार एवं सफल उपन्यासकार हैं,
नाटककार के रूप में अभूतपूर्व एवं अप्रतिम हैं। कवि, दार्शनिक, कथाकार, निबन्
कार और नाटककार आदि अनेक रूपों में वे एक साथ हमारे सामने आते हैं। उनक
प्रतिभा बहुमुखी थी, हिन्दी साहित्य की जिस विधा पर उन्होंने लेखनी चलाई व
गरिमामण्डित हो पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हुई।

यद्यपि 'प्रसाद' का कृतित्व द्विवेदी काल से ही प्रारम्भ हुआ था, किन्तु
द्विवेदी युग से कभी-प्रभावित नहीं हुए। उनकी अपनी मौलिक विचारधारा थी तथ
साहित्य के प्रति निजी दृष्टिकोण था। 'प्रसाद' दार्शनिक प्रवृति के व्यक्ति थे
उन्होंने भारतीय प्राचीन साहित्य एव इतिहास का गहन अध्ययन किया था। अत
उनकी विचारधारा में गांभीर्य एवं चिन्तनशीलता है। उनके हृदय में भारतीय संस्कृ
के प्रति अगाध अनुराग एवं अपूर्व श्रद्धा थी। उन्होंने अतीत की दुर्भेद्य प्राचीरों को
खोदकर आर्य-संस्कृति के अमूल्य रत्नों को निकालकर लाने का जो अनुसधान कार्य
किया है वह अभूतपूर्व है। 'प्रसाद' के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटकों का अध्ययन
करने पर यह बात स्पष्ट रूप से लक्षित होती है कि उनके हृदय मे भारतीय
संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा करने की अभिलाषा थी। उनका यह विश्व स था कि
भारत का सांस्कृतिक पुनरुत्थान केवल भारत के प्राचीन उज्ज्वल एवं गौरवमय
पृष्ठों को खोलकर सामने रखने से ही संभव होगा। इसीलिये उन्होंने बगला के
द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों की भांति मुस्लिम युग को नाट्य रचना हेतु नहीं
अपनाया क्योंकि वह तो भारत की पराधीनता एव पराभव का काल है। 'प्रसाद'
ने भारत के जिस गौरवशाली एवं स्वर्णिम काल को अपनाया है, उसे ज्यों का त्यों

ग्रहण नहीं किया, अपितु गहन अध्ययन एवं मनन के पश्चात उसमें यथोचित ठोस आधार पर परिवर्तन भी किये हैं। उस काल के इतिहास का गम्भीर विवेचन उन्होंने अपनी सूक्ष्म एवं कोमल कल्पना द्वारा तथ्यों के आधार पर किया है।

भारतेन्दु-काल मे हिन्दी में अनेक नाटक लिखे गये थे। किन्तु उनमें से अधिकांश या तो बंगला नाटकों के अनुवाद थे अथवा बंगला नाटकों से प्रभावित थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रथम नाटक 'विद्यासुन्दर' बंगला का अनुवाद था। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक उन्होंने संस्कृत का आधार लेकर लिखा था। इसके अतिरिक्त 'भारत दुर्दशा,' नील देवी' आदि भारतेन्दु ने कुछ मौलिक नाटक भी लिखे थे। किन्तु वास्तव में यह हिन्दी नाटकों का प्रयोग काल ही था। दूसरी ओर बंगाल में द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों की धूम मची हुई थी। अतः हिन्दी में भी राय के नाटकों का प्रभाव बढ़ रहा था। राय के नाटकों के अनुवाद हिन्दी में खूब हो रहे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों को लोग भूलते जा रहे थे। पारसी रंगमंच पर जो हिन्दी नाटक अभिनीत किये जाते थे वे साहित्यिक कोटि के नहीं थे। इस प्रकार हिन्दी नाटकों की स्थिति उस समय,अत्यन्त दयनीय थी। देश में राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उथल पुथल मची हुई थी। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' मे भारत की दशा का ("हम क्या थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी') तत्कालीन चित्र भी प्रस्तुत किया है।

'प्रसाद' ने अपनी रचनाओं का सूत्रपात विषम एवं प्रभावग्रस्त परिस्थितियों में किया। हिन्दी पर बंगला एवं अंग्रेजी साहित्य का आतंक छा रहा था। काव्य के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, कथा साहित्य मे शरतचन्द्र तथा नाटकों के क्षेत्र में द्विजेन्द्रलाल राय का बोलबाला था। 'प्रसाद' ने तत्कालीन परिस्थितियों का भली प्रकार अध्ययन किया और एक क्रान्तिकारी साहित्य-स्रष्टा के रूप में वे सामने आये। जिस कोटि की रचनाएं बंगला साहित्य में रवीन्द्र, शरत एवं द्विजेन्द्रलाल राय दे रहे थे उसी कोटि की मौलिक एवं साहित्यिक रचनाएं हिन्दी को प्रदान कर उन्होंने हिन्दी का मस्तक उन्नत किया। विशेष-रूप से काव्य और नाटक के क्षेत्र में उनका कृतित्व अभूतपूर्व एवं अक्षुण्ण है।

सन् १६१०-११ मे 'प्रसाद' ने अपने प्रथम नाटक 'सज्जन' की रचना की थी। इसका कथानक महाभारत की कथा पर आधारित है, जब कि पाण्डव अज्ञात वास में होते है। इसकी रचना भारत की प्राचीन नाट्यशैली पर हुई है। इसमें नान्दी पाठ, सूत्रधार तथा भरतवाक्य आदि सब दिया गया है। प्रसाद का दूसरा नाटक 'कल्याणी परिणय' (१६१२) तथा तीसरा 'करुणालय' (१६१२) और चतुर्थ 'प्रायश्चित' (१६१४) है। 'प्रायश्चित' की शैली 'सज्जन' से भिन्न है, न तो

नान्दीपाठ, न तो सूत्रधार और न भरतवाक्य ही इसमें मिलता है। 'प्रायश्चित्त' कथानक पृथ्वीराज और जयचन्द की ऐतिहासिक किंवदंती के आधार पर लि गया है। अपने कृत्य पर जयचन्द के हृदय में आत्मग्लानि एवं पश्चाताप का भ जागृत होता है। 'कल्याणी-परिणय' एक एकांकी रूपक है। इसकी कथाव मौर्यकाल की है, जिसमें सिकन्दर के सेनापति सेल्युकस की पराजय और उसकी पु कल्याणी का चन्द्रगुप्त से परिणय कराया गया है। इसमें नांदीपाठ और भ वाक्य आदि प्राचीन शैली का परिपालन किया गया है। सम्पूर्ण नाटक पद्यमय तथा गानों का समावेश भी है। इस नाटक में वीर और शृंगार रस का समावे किया गया है। 'करुणालय' गीति-नाट्य शैली पर लिखा गया है। इसकी रच अतुकान्त मात्रिक छन्द में हुई है। यह 'प्रसाद' का नवीन प्रयोग है। इसकी कथावस राजा हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा पर आधारित है। इस प्रकार 'प्रसाद' प्रारम्भिक चारों नाटक भिन्न-भिन्न शैलियों में लिखे गये हैं, जिसमें लेखक की कल अपनी दिशा खोज रही है।

प्रसाद ने सन् १९१५ में 'राज्यश्री' की रचना की। इसकी कथावस्तु कवि बाण के 'हर्षचरित' और चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के विवरण के आधार पर लिखी ग है। नाटककार का उद्देश्य 'राज्यश्री' के चरित्र को प्रस्तुत करना है। इसके प्रथम संस्करण में नान्दीपाठ और भरतवाक्य रखे गये थे, किन्तु द्वितीय संस्करण में दृश्यों और अंकों की संख्या में अभिवृद्धि करदी गई और नान्दीपाठ तथा भरतवाक्य को हटा दिया गया। प्रस्तुत नाटक घटना प्रधान होने के कारण लेखक ने पात्रों का चरित्र चित्रण घटनाओं में ढालकर किया है। 'विशाख' (१९२१) की रचना से 'प्रसाद' का ऐतिहासिक अनुसंधान एवं स्वतन्त्र चिन्तन प्रारम्भ होता है। इसकी कथावस्तु कल्हण की 'राजतरंगिणी' के प्रारम्भिक अंश पर आधारित है। 'राज्यश्री' और 'विशाख' में प्रसाद की नाट्यकला में निखार एवं विकास के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। पूर्ववर्ती नाटकों की अपेक्षा इसमें विचारों की स्थिरता है।

सन् १९२२ में प्रसाद ने अपने महत्त्वपूर्ण नाटक 'अजातशत्रु' की रचना की। इस नाटक की कथा-वस्तु 'प्रसाद' के अन्य नाटकों के समान ही ऐतिहासिक है, किन्तु इतिहास की रूक्षता को तिरोहित करने के लिए लेखक ने कल्पना और भावुकता से भी काम लिया है, जिससे नाटक की रोचकता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। वे इतिहासकारों की इस बात से असहमत हैं कि अजात के द्वारा बिम्बसार की हत्या हुई थी। प्रस्तुत नाटक में कौशल, कौशाम्बी तथा मगध के राजपरिवारों के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण किया गया है। नाटक का आरम्भ संघर्ष से होता है, विकास संघर्ष में होता है, किन्तु समाप्ति संघर्ष के परिशमन द्वारा होती है। पाश्चात्य नाट्य शैली

का प्रभाव इस नाटक में पाया जाता है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द विशेषरूप से बिम्बसार, वासवी और अजातशत्रु के चरित्र चित्रण में विशेष सहायक हुआ है। दार्शनिक विचारों को लेखक ने बिम्बसार गौतम तथा मल्लिका के द्वारा अभिव्यक्त किया है। तीन कथाओं का सुन्दर समावेश कर प्रसाद ने अपने कथा वस्तु के कौशल को प्रकट कर अपनी नाटकीय कला को विकास प्रदान किया है। युद्ध और संघर्ष के वातावरण में बुद्ध की करुणा का स्रोत प्रवाहित कर कथावस्तु को मार्मिकता प्रदान की गई है। प्रस्तुत नाटक की रचना शैली और भाषा पूर्व के नाटकों से अधिक परिमार्जित एवं सुन्दर है।

सन् १९२३-२४ में 'प्रसाद' ने एक रूपक बद्ध नाटक 'कामना' की रचना की थी जो कि रचना काल के तीन वर्ष बाद सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत नाटक के पात्र हाड़-मांस के बने न होकर भावनाओं एवं विचारों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इसमें मानव समाज का आदि से लेकर वर्तमान काल तक का चित्र प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान सभ्यता पर कटुव्यंग प्रस्तुत कर लेखक ने उसका खोखला रूप दरसाया है। लगता है 'प्रसाद' को आर्य संस्कृति की अधोगति पर हार्दिक क्षोभ था, अतः प्राचीन संस्कृति के विनाश का चित्र प्रस्तुत करते हुए लेखक ने पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता के आडम्बर पूर्ण रूप को इस रूपक में दिखलाया है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' एक पौराणिक घटना पर आधारित नाटक है। भगवान श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने खाण्डव वन में आग लगाकर नागों को भस्म कर दिया था। इस पर नागराज तक्षक द्वारा अर्जुन के पुत्र परीक्षित की हत्या कर दी गई, परीक्षित का पुत्र जनमेजय प्रतिशोध लेता है। इस प्रकार इसमें भारत की आर्य और नाग जाति का संघर्ष बतलाया गया है। संघर्ष पूर्ण वातावरण के बीच चरित्र चित्रण करने की अद्भुत क्षमता इस नाटक की विशेषता है।

सन् १९२८ में प्रसाद' ने अपने श्रेष्ठ नाटक 'स्कंदगुप्त' की रचना की। 'स्कंदगुप्त', 'प्रसाद' के नाटकीय विकास का मील का पत्थर (Mile-Stone) है। 'स्कंदगुप्त' की रचना के पश्चात स्वयं लेखक को संतुष्टि हुई। कुछ आलोचकों के मतानुसार 'स्कंदगुप्त' प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। पाश्चात्य एवं भारतीय नाट्य-कलाओं का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत नाटक में देखने को मिलता है। भारतीय नाट्य-शास्त्र की पांचों अवस्थाओं-प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम् का स्पष्ट गुंफन इस नाटक में हुआ है। जिस समय देश पर बर्बर विदेशी हूणों के निरंतर आक्रमण हो रहे थे उस समय गुप्त सम्राट कुमारगुप्त कुसुमपुर में विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहा था। युवराज स्कंदगुप्त गुप्तकुल की अव्यवस्था देख कर अपने अधिकार की ओर से उदासीन था। उसी समय मालवा पर विदेशी हूण आक्रमण

करते हैं। इधर कुमारगुप्त का निधन होता है। पारिवारिक कलह के कारण तथा बन्धुवर्मा के आग्रह पर स्कंदगुप्त मालव का शासन सूत्र अपने हाथ में न लेता है। हूणों के आक्रमण से देश की रक्षा करना प्रधान कर्तव्य समझ स्कंद सेना का संगठन करता है। इसी बीच अपने सौतेले भाई पुरगुप्त के कुचक्र को उसे दबाना पड़ता है। किन्तु सेनापति भटार्क की धोखेबाजी के कारण हूणों को पराजित करने में वह असमर्थ रहता है और स्कंद की सेना एक बार पराजित हो कुम्भा के रण क्षेत्र में तितर बितर हो जाती है। स्कंद एक बार पुनः गुप्त साम्राज्य के शेष वीरों को एकत्रित कर, सिंधु के प्रांगण में हूणों से युद्ध कर उन्हें पूर्ण रूप से पराजित कर देता है। इस प्रकार आर्यावर्त विदेशियों से मुक्त हो जाता है। प्रस्तुत नाटक में लेखक ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा पात्रों के चरित्रों का सुन्दर विकास किया है। 'स्कंदगुप्त' में प्रसाद जी की राष्ट्रीय भावना अपने उत्कृष्टतम रूप में प्रकट हुई है। बन्धुवर्मा, स्कंद, पर्णदत्त, देवसेना व मातृगुप्त देश भक्ति का महान आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। स्कंदगुप्त फल की प्राप्ति की दृष्टि से सुखान्त है, किन्तु नायक की दृष्टि से दुखान्त है। नाटक का उद्देश्य महान है।

सन् १९२९ में प्रसाद ने 'एक घूंट' नाटक लिखा। कुछ आलोचक हिन्दी एकांकी नाटक का सूत्रपात 'एक घूंट' से मानते हैं। सन् १९३१ में 'प्रसाद' ने सबसे बृहत ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' की रचना की। नाटक की भूमिका में विद्वान लेखक ने अपने सबल तर्कों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि मौर्य राजा मुरा से उत्पन्न नहीं थे, वरन् पिपलीकानन के क्षत्रिय थे। चन्द्रगुप्त अपने अलौकिक पराक्रम से सेल्यूकस को करारी पराजय देता है। 'चन्द्रगुप्त' में चाणक्य का चरित्र एक हृदय प्रधान कूटनीतिज्ञ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'चन्द्रगुप्त' का कथानक प्रसाद के अन्य नाटकों की भाँति न तो पांच अंकों में (स्कंदगुप्त) का है और न तीन अंकों (अजातशत्रु) का, समूचा नाटक चार अंकों में कुशलतापूर्वक लिखा गया है। नाटक में तीन प्रमुख घटनायें हैं:—अलक्षेंद्र का आक्रमण, नंद वंश का तिरोहित होना तथा सेल्यूकस का चन्द्रगुप्त द्वारा पराजित होना। लेखक ने चतुराई से उक्त तीनों घटनाओं को संगठित कर चन्द्रगुप्त के चरित्र का क्रम बद्ध विकास प्रस्तुत किया है। कथावस्तु का सुन्दर विन्यास एवं सौष्ठव समन्वित होकर जिस रूप में इस नाटक में आया है सम्भवतः प्रसाद के अन्य नाटकों में देखने को नहीं मिलता।

'प्रसाद' ने सन् १९३३ में अपने अन्तिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' की रचना की। 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक नाटक होने के अतिरिक्त समस्या प्रधान नाटक है। ध्रुवस्वामिनी गुप्त साम्राज्य की सम्राज्ञी है और उसका पति रामगुप्त एक भीरु क्लीव एवं अयोग्य पुरुष है। रामगुप्त की कमजोरियों का लाभ उठा-

कर लिगम ध्रुवस्वामिनी की मांग करता है। रामगुप्त इतना पतित है कि अपनी पत्नी को शकराज को भेंट कर देना है। ध्रुवस्वामिनी एवं गुप्तकुल की मर्यादा की रक्षा के लिए चन्द्रगुप्त शकराज के डेरे में जाकर उसका वध कर देता है। इससे पूर्व परिस्थितियों के वश चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी का प्रेम विकसित हो चुकता है। अतः अन्त में दोनों का विवाह कराया गया है। नाटक में दो समस्याओं का समाधान कराया गया है-क्लीव एवं पतित पति को पत्नी रखने का अधिकार नहीं। यदि राजा अयोग्य हो तो राज सिंहासन से उतार देना चाहिए।

'प्रसाद' के नाटक शृंगार रस से युक्त वीर रस प्रधान है। उनके नाटकों में प्रेम के विविध रूप मिलते हैं। अधिकांश पात्रों में प्रेम प्रथम दर्शन में ही हो जाता है। चन्द्रलेखा-विशाखा, बाजिरा-अजातशत्रु, विजया स्कंदगुप्त, कार्नेलिया-चन्द्रगुप्त और अलका-सिंहरण आदि का प्रेम प्रथम दर्शन में ही होता है। इस प्रकार के प्रेम का अन्त बहुधा दो रूपों में पाया जाता है-एक तो पूर्ण रूप से विकसित होकर दाम्पत्य रूप ग्रहण कर लेता है और दूसरा विरोधी रूप ग्रहण कर असफलता, निराशा और पश्चाताप के रूप में निःशेष होता है। पहले प्रकार के अन्तर्गत अलका-सिंहरण, चन्द्रगुप्त-कार्नेलिया, ध्रुवस्वामिनी-चन्द्रगुप्त आदि का प्रेम पूर्ण विकास को प्राप्त हो सफल हुआ है। दूसरे प्रकार का विजया स्कंदगुप्त, मल्लिका विरुद्धक का है। एक और तीसरे प्रकार का निर्मल, वासनारहित प्रेम भी 'प्रसाद' के नाटकों में देखने को मिलता है। कल्याणी-चन्द्रगुप्त, देवसेना और स्कन्दगुप्त का इसी प्रकार का प्रेम है।

'प्रसाद' ने भारतीय संस्कृति को दिव्य बनाने वाले अमूल्य रत्नों को विस्मृति के गर्त से निकालकर हमारे सामने रखा। साथ ही उनमें राष्ट्रीय प्राण प्रतिष्ठा कर पश्चिमी सभ्यता में चौंधियाये भारतीयों का पथ प्रदर्शन किया। उनकी राष्ट्रीयता में भारत का गौरव है, उसमें शक्ति, शौर्य, क्षमा, सेवा, बलिदान आदि वे सभी दिव्य गुण वर्तमान हैं जिसमें हमारी संस्कृति का पोषण हुआ है। 'प्रसाद' ने अपने नाटकों के लिए भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग को चुना है। यह हमारे गौरव एवं विदेशियो की पराजय की कहानी है। 'स्कंदगुप्त' में बन्धुवर्मा कहता है-'तुम्हारे शस्त्रों ने बर्बर हूणों को बतला दिया है कि रण विद्या केवल नृशंसता नहीं है..........तुम्हारे पैरों के नीचे दबे कंटों को स्वीकार करना पड़ेगा, भारतीय दुर्जय वीर है।" अलका का राष्ट्रीय गीत—"हिमाद्रि तुंग शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती। स्वयं प्रभा समुज्ज्वला, स्वतन्त्रता पुकारती।" मातृगुप्त का राष्ट्र का उद्बोधन करने वाला गानः—

"हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार

× × × ×

निछावर करदें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।"

'प्रसाद' के नाटकों में राष्ट्र को संगठित करने तथा देश को समृद्ध और महान बनाने की भावना सर्वत्र देखने को मिलती है। 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कंदगुप्त' में यह भावना चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है। 'स्कंदगुप्त' में पर्णदत्त, बन्धुवर्मा, स्कंदगुप्त, मातृगुप्त और देवसेना देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित हो मातृभूमि के लिये बलिदान होने को सदैव तत्पर हैं। स्कंदगुप्त अपने अधिकार के लिए नहीं राष्ट्र के लिए लड़ रहा है। वह कहता है-' मेरा स्वत्व न हो, मुझे अधिकार की आवश्यकता नहीं। यह नीति और सदाचार का महान आश्रय वृक्ष गुप्त साम्राज्य हरा-भरा रहे और कोई भी इसका उपयुक्त रक्षक हो।" 'स्कंदगुप्त' में देवसेना जैसी आर्य ललना है जोकि देश सेवा के लिए भीख मांगती है। अपनी अभिलाषायें एवं कामनायें कुचलकर देश के उद्धार के लिए अपने को तिरोहित कर सकती है। एक पंक्ति में हम कह सकते हैं कि 'प्रसाद' के पात्र राष्ट्र निर्माण का संकल्प ले देश की बलिवेदी पर अपना उत्सर्ग करने के लिए प्राण पण से तत्पर हैं।

'प्रसाद' पहले कवि है, लेखक बाद मे। उनका कवि रूप नाटकों में भी छिपा नहीं रहा। कहीं कहीं तो वह अति की सीमा को स्पर्श करता हुआ पाया जाता है। जहाँ भी अवसर मिला और यदि न भी मिला है तो खोज लिया गया है, पर कवि रूप प्रकट हुये बिना नहीं रहा है। 'स्कंदगुप्त' में मातृगुप्त के अनेक संवाद काव्यमय प्रलाप से जान पड़ते हैं। अत्यधिक गीतों की भरमार नाटक की कथावस्तु में बाधा उपस्थित करने के साथ ही बोझिल हो जाती है। 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त' तथा 'स्कंदगुप्त' मे जिसे देखो वही गाने लगता है।

नाट्यकला की दृष्टि से 'राज्य श्री' पूर्ववर्ती रचनाओं से अपेक्षाकृत अच्छी कृति है। किन्तु 'प्रसाद' की नाट्यकला का पूर्ण विकास 'स्कंदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में पाया जाता है। 'विशाख', 'अजातशत्रु' एवं 'जनमेजय का नागयज्ञ' प्रयोग काल की रचनायें कही जा सकती हैं। 'प्रसाद' के नाटकों मे स्वगत कथन और पद्यात्मक संवादों का प्रयोग संस्कृत के नाटको के प्रभाव के कारण हो सकता है। 'स्कंदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' मे स्वगत कथन अपेक्षाकृत स्वाभाविक रूप में मिलता है। 'प्रसाद' के प्रारंभिक नाटकों मे भरतवाक्य के ढग के आशीर्वादात्मक वचन मिलते हैं। पर शनैः शनैः बाद की रचनाओं मे इसका लोप होता चला गया है। लगभग सभी नाटकों में 'पात्रो' का चरित्र सुन्दर बन पड़ा है। कार्य व्यापार एवं नाटकीय दृश्यों का सफल विधान उनकी नाट्यकला की सफलता में चार चाँद लगा देता है।

'प्रसाद' के सभी नाटकों का प्रारम्भ आकर्षक एवं अन्त प्रभावशाली है।

भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यकला के सुन्दर समन्वय द्वारा उन्होंने अपनी मौलिक कला का निर्माण किया, जिस पर प्रसादत्व की छाप है। उनके नाटकों की कथा-वस्तु, रस, नायक, शील आदि भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुकूल हैं। भारतीय आचार्यों ने रस को प्रधान माना है और पश्चिमी आचार्यों ने संघर्ष और कार्य-व्यापार को प्रमुख स्थान दिया है। प्रसाद के सभी नाटकों में वीर रस प्रधान एवं शृंगार सहायक रूप में मिलता है। इसके अतिरिक्त संघर्ष और कार्य व्यापार भी सफलता पूर्वक प्रस्तुत किये गये हैं। विशेष रूप से 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद की सामंजस्य कला बहुत ही सफल हुई है।

भारतीय दृष्टिकोण से रंगमंच पर दुखद, मृत्यु, आत्महत्या, युद्ध आदि के दृश्य दिखाना वर्जित है। किन्तु 'प्रसाद' ने स्वच्छन्दतापूर्वक इस प्रकार के दृश्यों को मंच पर दिखलाया है। यह पाश्चात्य नाट्यकला का प्रभाव है। 'स्कंदगुप्त' में विजया की आत्महत्या, 'चन्द्रगुप्त' में नंद और पर्वतेश्वर का वध और कल्याणी का आत्मघात, 'ध्रुवस्वामिनी' में शकराज और रामगुप्त का वध आदि सफलता पूर्वक रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये हैं। उनके नाटकों का अन्त न तो सुखान्त है और न दुखान्त ही वरन् अपने निजी ढंग का मौलिक 'प्रसादान्त' अथवा प्रशान्त है।

अभिनय के सम्बन्ध में 'प्रसाद जी' का मत था-"नाटकों के लिए रंगमंच की रचना होनी चाहिए, न कि रंगमंच के लिए नाटकों की।" अतएव उनके नाटकों में रंगमंच सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ पाई जाती हैं। आलोचकों ने अभिनय सम्बन्धी निम्न दोष उनके नाटकों पर लगाये है:—(1) नाटक बहुत बड़े हैं (2) भाषा क्लिष्ट है (3) स्वगतों की भरमार है (4) गीतों का आधिक्य है (5) दृश्य मंच पर प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। वास्तव में ये आरोप उनके सभी नाटकों के लिए सत्य नहीं है। 'चन्द्रगुप्त' को छोड़ कर सभी नाटक छोटे हैं। सभी लगभग दो ढाई घंटे में समाप्त हो सकते हैं। पद्यात्मक एवं स्वगत कथन कम किये जा सकते हैं अथवा निकाले जा सकते है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक अभिनय की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इसमें केवल तीन अंक हैं और प्रत्येक अंक में एक दृश्य है। प्रस्तुत नाटक में संकलन त्रय का भी सुन्दर निर्वाह हुआ है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि छोटी-मोटी त्रुटियाँ होते हुए भी प्रसाद के नाटकों की श्रेष्ठता में कमी नहीं है। उनके नाटकों में साहित्यिक सजीवता कूट-कूट कर भरी है। निश्चय ही उनके नाटक हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि हैं। वे माँ भारती के वरद पुत्र थे, उनके नाटकों ने हिन्दी का गौरव बढ़ाया है।

३ कहानीकार 'प्रसाद'

स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक ऐसे दैदीप्यमान नक्षत्र हैं, जिसकी ज्योति से हिन्दी साहित्य का अंग प्रत्यंग आलोकित है। 'प्रसादजी' की प्रतिभा का प्रसाद हिन्दी के लगभग सभी अंगों को उपलब्ध हुआ है। क्या कविता, क्या नाटक, क्या उपन्यास, क्या निबन्ध और क्या कहानी–सभी क्षेत्रों में उनकी लेखनी ने अद्भुत कौशल दर्शाया है। 'प्रसाद' मां भारती के सच्चे सपूत थे, उन्होंने हिन्दी का गौरव बढ़ाया है और उसका मस्तक उन्नत किया है। उनके व्यक्तित्व की गंभीरता उनकी रचनाओं में भी परिलक्षित होती है। वे भारतीय संस्कृति के उन्नायक थे। उनके साहित्य का लक्ष्य हमारे देश के उच्च आदर्श एवं अतीत के गौरव का अनुसंधान कर उसकी वास्तविकता को प्रकाश में लाना था। साथ ही आधुनिक समस्याओं एवं विचारधाराओं का भी सुन्दर समावेश उनकी कृतियों में हुआ है। वे अतीत की श्रेष्ठता के पोषक तथा नवीनता के संरक्षक थे।

आधुनिक काल में जिन साहित्य की विधाओं की आशातीत उन्नति हुई है, उनमें कहानी और उपन्यास प्रमुख स्थान रखते हैं। हिन्दी कथा साहित्य के विकास में प्रसाद का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के विद्वानों ने 'भारतेन्दु काल' को आधुनिक हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं, उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि का आविर्भाव काल माना है। डा० रामरतन भटनागर ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। श्री कृष्णलाल तथा श्री शुक्ल ने श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। श्रीराय कृष्णदास बंग महिला की 'दुलाई वाली' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। वास्तव में ये कहानियाँ हिन्दी की प्रयोग कालीन लघु कथाएँ हैं। कहानी कला की दृष्टि से जिन मूलभूत तत्वों की आधुनिक कहानी में अपेक्षा होती है, उनका पूर्णकौशल निर्वाह इन कहानियों में नहीं हुआ है। श्रीवाजपेयी ने 'प्रसाद' की प्रथम कहानी 'ग्राम' को हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान

प्रदान किया है। प्रसाद की प्रेरणा से सन् १६०६ में काशी से 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। इसी वर्ष प्रसाद की 'ग्राम' कहानी इन्दु मे प्रकाशित हुई थी और इसके बाद 'रसिया बालम' आदि अनेक कहानियाँ निरंतर 'इन्दु' मे प्रकाशित होती रही। प्रसाद हिन्दी-रोमांटिक स्वच्छन्दतावादी धारा के सशक्त कलाकार है, अतः कहानी के प्रति उनका आकर्षण सहज रूप से हुआ। प्रसाद की कहानियों में कहानी कला भावपूर्ण साहित्यिक शैली में प्रकट हुई। उनकी कल्पना एवं अनुभूति का सुन्दर समन्वय कहानियों में देखने को मिलता है।

'प्रसाद' का कथा साहित्य अल्प होते हुए भी महत्वपूर्ण है। प्रसाद ने लगभग २५ वर्षों के कृतित्व काल मे सत्तर कहानियाँ और ढाई उपन्यास ('कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' (अपूर्ण) लिखे हैं। हिन्दी जगत मे प्रसाद ने उपन्यासकार की अपेक्षा कहानीकार के रूप मे पहले प्रवेश किया। प्रसाद का प्रथम कहानी संग्रह 'छाया' सन् १६१२ मे प्रकाशित हुआ था तथा उनका प्रथम उपन्यास 'कंकाल' सन् १६२६ मे प्रकाशित हुआ था। रचना क्रम की दृष्टि से प्रसाद की कहानियों के पांच संग्रह इस प्रकार हैं: (१) 'छाया' (१६१२) (२) 'प्रतिध्वनि' (१६२६), (३) 'आकाशदीप' (१६२६), (४) 'आंधी' (१६३१), (५) 'इन्द्रजाल' (१६३६) इन पांचों संग्रहो की कहानियों का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि प्रसाद की कहानी कला का उत्तरोत्तर विकास होता गया है। विषय-वस्तु तथा शैली की दृष्टि से उनकी कहानियों मे पर्याप्त अन्तर है। भारत के अतीत और इतिहास के प्रति प्रसाद का सहज आकर्षण था, अतः उनके सभी संग्रहो मे ऐतिहासिक कहानियाँ उपलब्ध होती हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ अपेक्षाकृत बडी हैं तथा अपने सम्पूर्ण युग का चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनकी कुछ भावमूलक कहानियाँ गीति कार के कवि व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण आकार मे लघु गद्य गीत सी बनकर रह गई हैं।

'प्रसाद' के प्रथम कहानी संग्रह 'छाया' के प्रथम संस्करण में केवल पांच कहानियाँ थी, किन्तु द्वितीय संस्करण मे उनकी संख्या ग्यारह हो गई। तृतीय संस्करण में लेखक ने इन कहानियों का नव संस्कार किया तथा उनके रूप मे कुछ परिवर्तन भी कर दिया। 'छाया' की कहानियाँ प्रसाद की प्रारंभिक कहानियाँ हैं जो कि 'इन्दु' पत्रिका में पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। इन कहानियों में उच्च कोटि की कहानी कला एवं शिल्प विधान की अपेक्षा करना उचित नहीं होगा, क्योंकि ये लेखक की प्रारंभिक कहानियाँ हैं। इस संग्रह को ग्यारह कहानियाँ-तानसेन, चन्दा, ग्राम, रसिया बालम, चित्तौड़ उद्धार, शरणागत, सिकन्दर की शपथ, अशोक, गुलाम, जहाँआरा और मदन मृणालिनी हैं। 'तानसेन' एक ऐतिहासिक कहानी है, उसमें लेखक दो हृदयों का सच्चा प्रेम दर्शाता है जहाँ धार्मिक और सामाजिक बन्धन [illegible]

। 'चन्दा' में सच्चे प्रेम के साथ प्रति हिंसा और प्रतिशोध भी दर्शाया गया है। स्तुत कहानी में कथोपकथन लेखक की नाटकीय प्रतिभा से अनुप्राणित हैं। 'ग्राम' साद की रचना की दृष्टि से प्रथम कहानी है। इसमें मानव जीवन की एक घटना ो लेकर प्रभाव की सृष्टि की गई है। इसे यथार्थोन्मुखी कहानी कहा जा सकता । 'शरणागत' एक साधारण सी कहानी है जिसमें गदर के समय की परिस्थितियों ा चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'चित्तौड़ उद्धार', 'अशोक' और 'सिकन्दर की शप' तिहासिक कहानियाँ हैं। 'मदन मृणालिनी' प्रस्तुत संग्रह की अन्तिम कहानी है सकी कथा अनेक मोड़ ग्रहण करती है, जिसमें धर्म और प्रेम का द्वन्द्व दर्शाया ग और जिसका शमन पारसदाह के रूप में होता है।

'प्रतिध्वनि' प्रसाद की कहानियों का द्वितीय संग्रह है। इस संग्रह में पन्द्र कहानियाँ हैं—प्रसाद, गुदड़ साईं, गुदड़ी में लाल, सहयोगी, पत्थर की पुकार, प्रल कलावती की शिक्षा और दुखिया आदि। प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ 'छाया' सकल ी कहानियों से भिन्न प्रकार की है। इस सकलन की कहानियाँ गद्य काव्य सी प्रती ोती है। 'प्रसाद' की प्रौढ़ एवं अनूठी शैली का आभास इस संग्रह की कुछ कहानि ं मिलता है। 'प्रसाद' कहानी में कल्पना एवं भावात्मकता का आधिक्य है। 'गुद ाईं' कहानी में साईं की मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण किया है। 'गुदड़ी में लाल' कहानी में कथानक न्यून है तथा बुढ़िया की स्वाभिमानी प्रकृति का चित्रण प्रमुखत किया गया है। 'पत्थर की पुकार' और 'उस पार का योगी' कहानियों का कथान गण्य है और लेखक की गद्य काव्यात्मकता प्रधान है। 'प्रलय' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानी है जिसमें नाटकीयता की प्रमुखता है। 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में कथानक सूक्ष तथा गद्य काव्य एवं कल्पना का प्राधान्य है। यद्यपि ये प्रसाद की प्रारम्भिक कहानिय ं, किन्तु लेखक की कहानियों की दिशा विशेष का संकेत इन कहानियों से मिलता है

'आकाश दीप' प्रसाद की कहानियों का तृतीय संकलन है। इसमें कुल इक्कीस कहानियाँ हैं—आकाशदीप, ममता, स्वर्ग के खण्डहर में, हिमालय का पथिक, भिखा रिणी, प्रतिध्वनि, कला, देवीदासी, वैरागी, चूड़ीवाली तथा बिसाती आदि। इस संग्र की कुछ कहानियाँ कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं जिनमें प्रसाद की कहानी कला क विकसितरूप दृष्टि गोचर होता है। कुछ कहानियों में कला को प्रौढ़ता के दर्शन भ होते हैं। 'आकाश दीप' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखी गई एक श्रेष्ठ कहानी है। इस कहानी में चम्पा का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त मार्मिक और प्रभावोत्पादक है इसका कथानक रोचक है। चम्पा जलदस्यु बुद्धगुप्त से प्रेम करती है, किन्तु अपने पिता का हत्यारा समझकर उसके प्रति घृणा की मनोवृत्ति से प्रेरित हो अन्त तक समर्पण नहीं करती है। बुद्धगुप्त निराश होकर भारत लौट जाता है और चम्पा मर

वेदना की तीव्र ज्वाला में जलती हुई, अपने मृत पिता की स्मृति को हृदय में संजोये आकाशदीप जलाती रहती है। लेखक ने अपनी काव्यमयी शैली मे चम्पा के चरित्र मे प्रेम और मृत पिता की स्मृति का सघर्ष मनोवैज्ञानिक ढग से प्रस्तुत किया है। कथोपकथन द्वारा नाटकीय ढग से प्रारम्भ होकर अन्त तक यह कहानी पाठक के कौतूहल को बनाये रखती है तथा रोचक एवं आकर्षक बनी रहती है। कहानी मे स्थान स्थान पर गद्यकाव्य का रसास्वादन पाठक करता जाता है। 'ममता' ऐतिहासिक वातावरण को लेकर लिखी गई एक चरित्र प्रधान कहानी है। ममता एक भारतीय ललना है जो वैधव्य से सन्तप्त है। वह एक धर्मनिष्ठ, स्वाभिमानिनी, कर्तव्य परायण हिन्दू नारी है। लेखक ने हिन्दू विधवा नारी की दयनीय स्थिति का इन पंक्तियो मे अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है—'मन मे वेदना, मस्तक मे आँधी, आँखों मे पानी की बरसात लिए वह सुख के कंटक शयन मे विकल थी।"

'स्वर्ग के खण्डहर मे' कहानी का कथानक ऐतिहासिक स्पर्श लिए हुए है। इस कहानी में भावप्रवणता एव कल्पना का बहुरंगी रूप 'प्रसादजी' की स्वच्छदतावादी प्रतिभा का परिचायक है। 'हिमालय का पथिक' कथोपकथन के आधार पर विकसित होने वाली एक नाटकीय कहानी है। 'कला' एक प्रतीकात्मक कहानी है। लेखक ने रूप पर रस की विजय दर्शाते हुए कला की रक्षा की है। 'देवदासी' पत्र शैली में लिखी गई एक मात्र प्रसाद की कहानी है। लगता है प्रसाद को इस प्रकार के प्रयोग मे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। अतएव इसके पश्चात उन्होंने पत्र शैली की अन्य कोई भी कहानी नही लिखी। 'चूड़ीवाली' एक सुखान्त प्रेम कहानी है। चूड़ीवाली एक वेश्या पुत्री है, जो एक कुलवधू का जीवन-यापन करना चाहती है और अन्त मे वह अपने उद्देश्य मे सफल भी होती है। 'बिसाती' एक दुखान्त प्रेम कहानी है, जिसमें अनुभूति की गहनता एव काव्यमयी कल्पना का उचित योग हुआ है। इस कहानी का अन्त मर्मस्पर्शी है। वास्तव में 'आकाशदीप' की कहानियाँ कथानक और शैली दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

'आँधी' प्रसादजी की ग्यारह कहानियो का सग्रह है। आँधी, मधुआ, दासी, वेड़ी, घीसू, व्रतभग, नीरा तथा पुरस्कार आदि कहानियाँ इसमे संकलित हैं। इस संग्रह की कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे पूर्व प्रकाशित हो चुकी थी। इस संग्रह की कहानियो में प्रसाद की कहानी कला का प्रौढ रूप मिलता है। 'आँधी' कहानी 'प्रसाद' की स्वच्छदतावादी प्रकृति की द्योतक है। कहानी पर्याप्त लम्बी है, किन्तु कथावस्तु गौण है। सम्पूर्ण कहानी मे भावनाओ का प्राधान्य है जो अन्त मे पाठक को अवसाद मे निमज्जित कर देती हैं। 'मधुआ' एक लघु कहानी है, किन्तु प्रभावोत्पादक है। एक निकम्मे शराबी को एक निराश्रित बालक (मधुआ) की वेदना सहानुभति में

परिचित हो कर्म पथ पर अग्रसर करती है। शराबी में मानवीयता एवं शिशु प्रेम दर्शाया गया है। 'घीसू' और 'बेड़ी' यथार्थोन्मुखी रचनाएँ हैं। 'नीरा' कहानी समस्या प्रधान है। आस्तिकता और नास्तिकता का समाधान लेखक ने सहृदयतापूर्वक किया है। 'पुरस्कार' इस संग्रह की अन्तिम और श्रेष्ठतम कहानी है। इस कहानी की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हुई है। प्रस्तुत कहानी चरित्र प्रधान है। मधूलिका के चरित्र में लेखक ने प्रेम और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक रूप से अंकित किया है। मधूलिका अरुण के प्रेम के वशीभूत हो देशद्रोह करती है, किन्तु कर्त्तव्य भावना व देशप्रेम के जागृत होने ही वह विद्रोही अरुण को बन्दी कराती है। मधूलिका का अन्तर्द्वन्द्व दर्शाकर लेखक ने प्रेम और कर्त्तव्य (देशप्रेम) दोनों के प्रति उसकी ईमानदारी प्रकट की है। कहानी-तत्वों की दृष्टि से भी यह एक श्रेष्ठ कहानी है।

'इन्द्रजाल' प्रसाद की कहानियों का अंतिम और पाँचवा संग्रह है। इसमें इन्द्रजाल, सलीम नूरी छोटा जादूगर चित्र वाले पत्थर, गुण्डा, अनबोला तथा देवरथ और सालवती आदि चौदह कहानियाँ हैं। 'इन्द्रजाल' कंजरों के जीवन पर आधारित एक प्रेम कथा है। 'सलीम' एक चरित्र प्रधान कहानी है। जिसमें पात्रों की मनोवृत्तियों का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।। 'छोटा जादूगर' एक कलात्मक कहानी है जिसमें मातृप्रेम और कर्त्तव्य बुद्धि का सामञ्जस्य प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। 'नूरी' एक दुखान्त कहानी है जो कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। याकूब के हृदय में कर्त्तव्य और प्रेम का अन्तर्द्वन्द्व दर्शाकर और नूरी के हृदय में करुण-वेदना की सृष्टि करने में लेखक ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। 'नूरी' की भाँति ही 'चित्रवाले पत्थर' भी एक दुखान्त प्रेम कहानी है। 'गुण्डा' वस्तु, घटना, कथोप-कथन और शैली आदि सभी दृष्टियों से 'प्रसाद' की एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानी है। इस संग्रह की 'देवरथ' भी एक अन्य श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानी है। प्रस्तुत कहानी में सुजाता का चरित्र मानवीय करुणा को जागृत करने की अपूर्व क्षमता रखता है। इस कहानी में विचारों की प्रौढ़ता एवं शैली में निखार है। 'देवरथ' कहानी में प्रसाद ने मानव जीवन की वासनाकुलता तथा बौद्ध धर्म में प्रतिपादित अनात्मवादी चिन्तन धारा के विरोध में अपने विचार प्रकट किए हैं—"जीवन सत्य है, कर्त्तव्य सत्य है। आत्मा के आलोक में अन्धकार कुछ नहीं है।" प्रस्तुत संग्रह की अन्तिम कहानी है 'सालवती'। ऐतिहासिक आधार पर लिखी गई यह कहानी अपने सम्पूर्ण काल की बहुमुखी प्रवृत्तियों को समेटे हुए है। इस कहानी में प्रसाद की भावात्मकता गौण हो गई है तथा बौद्धिकता एवं विचारात्मकता प्रधान रूप ग्रहण कर लेती है।

वर्गीकरण की दृष्टि से प्रसाद की कहानियाँ विविध प्रकार की हैं। इनकी कुछ

कहानियाँ ऐतिहासिक हैं, इनमें तानसेन, शरणागत अशोक, आकाशदीप, ममता, पुरस्कार, देवरथ और सालवती प्रमुख हैं। इनमें से कुछ कहानियों में ऐतिहासिकता को केवल पृष्ठभूमि के रूप में लिया गया है तथा कुछ में ऐतिहासिक तथ्यों को आधार बनाया गया है। ऐतिहासिक कहानियों में बौद्धकाल, मुस्लिम काल और १८५७ के विद्रोह से सम्बद्ध कहानियाँ हैं। उनकी कुछ कहानियाँ प्रेम-मूलक हैं जो विशुद्ध नर-नारी प्रेम अथवा देश प्रेम पर आधारित हैं। इनमें से कुछ सफल प्रेम कहानियाँ हैं और कुछ असफल प्रेम कहानियाँ है। कुछ भावात्मक कहानियाँ हैं जिनमें 'आकाशदीप', 'भिखारिन' और प्रतिध्वनि आदि प्रमुख हैं। 'प्रसाद' की यथार्थोन्मुख कहानियों में 'छोटा जादूगर', 'बेड़ी' और 'विराम चिन्ह' श्रेष्ठ हैं। उन्होंने दो समस्यामूलक कहानियाँ भी लिखी हैं—'पत्थर की पुकार' और 'नीरा'। चरित्र प्रधान कहानियों में 'भिखारिन' श्रेष्ट है। प्रतीकात्मक कहानियों में 'प्रलय', 'ज्योतिष्मती' और 'कला' में केवल तीन कहानियाँ हैं। प्रसाद स्वच्छन्दतावादी कलाकार थे। अतः उनकी कतिपय कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें वर्गबद्ध नहीं किया जा सकता। 'सहयोग', 'अनमोल' और 'वैरागी' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। 'प्रसाद' की कुछ कहानियों में वातावरण और चरित्र का गुंफन अति सुन्दर बन पड़ा है। 'आकाशदीप' और 'विसाती' आदि कहानियों में लेखक ने कवित्वपूर्ण वातावरण में प्रेम का सुन्दर चित्रण किया है। कला की दृष्टि से वातावरण प्रधान कहानियाँ अधिक महत्व रखती हैं, क्योंकि इस प्रकार की कहानियों में लेखक अपनी कल्पना की तूलिका से वातावरण में रंग भरता है। वातावरण प्रधान कहानियों में प्रसाद नाटकीयता एवं आदर्श सृष्टि करने में अद्वितीय हैं।

कहानीकार 'प्रसाद' का उचित मूल्याङ्कन करने के लिए यह बात जानना परम आवश्यक है कि उनका कवित्व उनकी कहानियों में प्रकट हुए बिना नहीं रहा है। उनके कवि व्यक्तित्व की झलक उनकी कहानियों में भी स्पष्ट दीख पड़ती है। उन्होंने काल्पनिक एवं ऐतिहासिक वातावरण के बीच अपनी काव्यमयी शैली द्वारा मानव जीवन की विविध घटनाओं का उल्लेख करते हुए भावों के घात प्रतिघात दर्शाते हुए मानव अन्तर्द्वन्द का अपूर्व चित्रण अपनी कहानियों में किया है। दूसरी ओर प्रेमचन्द ने आधुनिक यथार्थ वातावरण के मध्य दैनिक जीवन की वास्तविक घटनाओं का स्वाभाविक एवं सजीव चित्रण किया है। वास्तव में प्रसाद और प्रेमचन्द एक दूसरे के पूरक हैं। प्रेमचन्द का कथासाहित्य प्रधानतया सामाजिक आधार पर टिका हुआ है, तो 'प्रसाद' सुसंस्कृत और स्वस्थ नारी और पुरुष के चरित्रों के रहस्योद्घाटन में संलग्न रहे। प्रसाद ने भारतीय इतिहास और दर्शन शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। साथ ही सामयिक समस्याओं का भी उन्होंने भली प्रकार अध्ययन किया था जिसका पूर्ण उपयोग उन्होंने अपने महाकाव्य 'कामायनी' और

'आँसू' स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद' के काव्य-जीवन पथ का मील का पत्थर है। यह 'प्रसादजी' की सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य कृति है। अनेक काव्य प्रेमी एवं साहित्य-मर्मज्ञ इसकी विरहानुभूति, मर्मवेदना, संगीतात्मकता एवं काव्य सौष्ठव आदि गुणों पर मुग्ध हैं। वे प्रसाद की समस्त कृतियों में 'आँसू' को अत्यन्त रुचिकर एवं सर्वाधिक प्रिय रचना समझते हैं। 'आँसू' काव्य सर्वप्रथम विक्रमी सं. १९८२ में प्रकाशित हुआ, जिसमें २५२ पंक्तियाँ थी। किन्तु आठ वर्ष पश्चात् सं १९९० में इसका परिवर्द्धित एवं संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसमें ३८० पंक्तियाँ हो गई और यही संस्करण आज प्रचलित है।

'आँसू' प्रसाद की वह काव्य रचना है, जिसने छायावादी कवि के रूप में प्रसादजी को अत्यधिक लोकप्रियता प्रदान की। 'आँसू' को लेकर हिन्दी के आलोचकों में पर्याप्त मतभिन्नता रही है। 'आँसू' के कतिपय रहस्यात्मक संकेतों के कारण कुछ समालोचक इसे अज्ञात प्रियतम के लिये बहाये गये आँसू मानकर रहस्यवादी अथवा आध्यात्मिक रचना मानते हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में इसके सम्बन्ध में उल्लेख किया है कि "जहाँ हृदय की तरंगें 'उस अनन्त कोने' को नहलाने चलती है, वहाँ आँसू उस अज्ञात प्रियतम के लिए बहते जान पड़ते हैं।" निम्नांकित पंक्तियों में 'अज्ञात प्रियतम' की ओर संकेत होने के कारण कबीर की रहस्यात्मक उक्तियों जैसा आभास मिलता है:—

"शशि मुख पर घूंघट डाले अंचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये।"

आँसू पृ० ११

"मादकता से आये तुम संज्ञा से चले गये थे।"

आँसू पृ० ३३

उपर्युक्त उक्तियों को यदि हम छायावादी काव्य रचना की एक विशिष्ट शैली

मानलें तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि किसी आध्यात्मिक अथवा रहस्यवादी प्रियतम का निरूपण न करते हुए उस अज्ञात प्रियतम की ओर संकेत कर रहा है जो इस लोक का ही है और वह अपनी अद्भुत रूप-सौंदर्य की छटा दिखलाकर आँखों से ओझल हो गया है अथवा किसी अन्य स्थान पर चला गया है। डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना का कथन है कि "आँसू काव्य मानव विरह की एक ऐसी रचना है जिसमें कवि अपने वैभवशाली अतीत की स्मृति से व्यथित एवं बेचैन होकर रो रोकर तथा सिसकियाँ भर भर कर अपनी करुण कथा कहता है।" 'आँसू' को मानवीय विरह व्यथा का काव्य मानते हुए भी, कुछ विद्वान इसे बिना किसी क्रम से लिखी गई, तारतम्य विहीन रचना मानते हैं। आचार्य शुक्ल का कथन है कि इसमें कवि कहीं तो अज्ञात प्रियतम के लिए आँसू बहा रहा है, कहीं लोक पीड़ा से व्यथित होकर 'विरदग्ध दुखी वसुधा' को अपनी प्रेमवेदना की कल्याणी शीतल ज्वाला का उजाला देना चाहता है और कहीं सदा जगती हुई अखण्ड ज्वाला या प्रेम वेदना की प्रभविष्णुता का अतिरंजित वर्णन करता हुआ दिखाई देता है। 'कहने का तात्पर्य यह है कि वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता।' प्रस्तुत शुक्लजी का आक्षेप 'आँसू के प्रथम संस्करण के लिये उपयुक्त हो सकता है। किन्तु द्वितीय संस्करण की रचना योजनाबद्ध हुई है, प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ने पर इसका एक समन्वित प्रभाव भी निष्पन्न होता है। प्रारम्भ में कवि ने अतीत के संयोग सुखों की सुखद स्मृतियों से उत्पन्न प्रेमी की व्यथा एवं मादक मनोदशा का चित्रण किया है। इसके पश्चात प्रियतम के रूप सौंदर्य की सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की है। तत्पश्चात मार्मिक प्रेम वेदना का निरूपण किया है। काव्य के अन्तिम अंश में 'चिर दग्ध-दुःखी वसुधा' के प्रति हार्दिक संवेदना प्रकट की गई है। डॉ० विनय मोहन शर्मा का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि, "'आँसू' की आत्मा को देखने पर उसमें तारतम्य जान पड़ता है।"

अतः हम कह सकते हैं कि 'आँसू' काव्य में मानवीय विरह वेदना की योजना बद्ध अभिव्यक्ति हुई है। इसमें प्रेमी की विरहव्यथा का सजीव निरूपण हुआ है। लौकिक प्रेम को जीवन की अमरता का आधार मानकर 'विरदग्ध दुःखी वसुधा' को आनन्दमयी नव चेतना प्रदान करने वाला सिद्ध किया है। कवि व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख हुआ है और समष्टि के कल्याण की मंगल कामना भी करता है। 'आँसू' का प्रत्येक पद मुक्ता की तरह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी भावरूपी माला की लड़ी में गुथा हुआ अपनी कान्ति प्रस्फुटित कर रहा है, साथ ही अपने समन्वित प्रभाव से दीप्तिमान हो पाठक को भावों में आत्मविभोर कर देता है।

'आँसू' का भाव पक्ष:—

'आँसू' प्रसाद के कवि व्यक्तित्व के भावप्रकाशन का एक प्रौढ़ चरण है

जिसकी परिणति 'कामायनी' महाकाव्य में हुई है। 'आँसू' में कवि ने अपने अन्तर की वेदना का मन्थन कर अनेक भावरत्न निकाले हैं। प्रेम के आदर्श का जो संकेत 'प्रेम-पथिक' में मिलता है उसमें अलौकिकता अधिक है। पर 'आँसू' में मानव जीवन की व्यावहारिकता का निरूपण प्रस्तुत कर जड़ प्रकृति में चेतनता का आरोपण करते हुए प्रसादजी अपनी अनुभूति को अग्रसर करते हैं। 'आँसू' कालीदास के 'मेघदूत' की भांति एक गीतिकाव्य है, जिसे आद्योपान्त पढ़ने पर एक सुनियोजित भाव कथा मिलती है। कवि ने कभी किसी अनुपम सुन्दरी से प्रेम किया था। कुछ दिनों तक यह प्रेम व्यापार चलता रहा, किन्तु वह प्रेमिका (प्रेयसी) कुछ कालबाद किसी कारण से अन्यत्र कहीं चली गई और कवि की आँखों से ओझल हो गई। प्रियतम के बिछुड़ जाने के पश्चात् एक दिन कवि के करुणा कलित हृदय में सहसा अतीत के संयोग सुख की मादक स्मृति करवट लेने लगी और विकल रागिनी बज उठी। बरबस कुछ विस्मृत बीती बातें स्मृति पटल पर उभर आई। नीलनिलय में फैले नक्षत्र लोक के समान ही उसके हृदय में स्मृतियों की एक बस्ती बस गई। उसके प्रणय-सिंधु में प्रसुप्त बड़वाग्नि धधकने लगी और प्यासी आँखें व्यग्र होकर अपने प्रियतम के दर्शनों के लिये व्याकुल हो मछली की भांति तड़पने लगी। अतीत की स्मृतियाँ उसके हृदय के छालों को मलमल कर फोड़ने लगी। संयोग सुख की मादकता का नशा उस पर ऐसा छागया कि उसे लगा मानों उसका प्रियतम अपने शशि मुख पर घूंघट डाले हुए और आंचल में दीपक छिपाये हुए गोधूली बेला में उसके पास पुनः मिलने आ गया हो। जिस प्रकार हिमकर का परिचय राका और जलनिधि से होता है, वैसे ही प्रेमी के जीवन में प्रियतम का आगमन हुआ था। यद्यपि कवि जानता है वह एक मिथ्या मोह माया थी:—

'छलना थी तब भी मेरा, उसमें विश्वास घना था।
उस माया की छलना में, कुछ सच्चा स्वयं बना था।।"

अब कवि निजी मानसिक वेदना से क्षत विक्षत हो जग की ओर उन्मुख होता तो पाता है कि इस संसार में कहीं भी सुख शान्ति और विश्राम नहीं है। यह चर जगत व्यथा से पीड़ित है। तब वह चिर दुखी वसुधा के प्रति सहानुभूति व्यक्त र उसे अपने आँसुओं से सींचकर, सींच कर, हराभरा बनाना चाहता है। 'आँसू' व्य की भावकता में विश्ववेदना पर हार्दिक सहानुभूति प्रकट की गई है तथा क्तिगत प्रेम वेदना का विश्ववेदना में पर्यवसान हुआ है:—

"जगती का कलुष अपावन, तेरी विदग्धता पावे।
फिर निखर उठे निर्मलता, यह पाप पुण्य हो जावे।।"

"आँसू वर्षा से सिंचकर दोनों ही कूल हरा हो,
उस शरद प्रसन्न नदी में जीवन द्रव अमल भरा हो।"

वस्तुतः 'आँसू' शृंगार रस प्रधान काव्य है जिसका पर्यवसान शान्त रस में हुआ है। मूलतः प्रसादजी प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। विरहजन्य तीव्रानुभूति के अनेक मार्मिक चित्र कवि ने इस काव्य में अंकित किये हैं। इसका प्रत्येक पद आत्मानुभूति से युक्त है। काव्य के भाव सौंदर्य के अन्तर्गत अनेक संचारी भाव एवं स्थाई भाव आते हैं। जो भाव एवं मनोविकार अस्थिर एवं सचरणशील हों जल तरंग की भांति हृदय रूपी सरोवर में तरंगित होते हैं उन्हे सचारीभाव कहते हैं। ये संचारीभाव स्थाई भाव का पोषण कर उसे रस रूप में परिणत करने का कार्य करते हैं, इनकी संख्या ३० मानी गई है। 'आँसू' काव्य में कितने ही संचारी भावों को मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है।

उदाहरणार्थः—स्मृति-संचारी भाव सादृश्य वस्तु के देखने से अथवा तत्सम्बंधी विषयों के स्मरण करने से जाग्रत होता है। 'आँसू' काव्य में कवि जैसे ही अतीत के संयोग सुख का स्मरण करता है, वैसे ही उसके हृदय में स्मृतियों की एक बस्ती सी बस जाती है और उसके करुणा कलित हृदय में विकल रागिनी बजने लगती है। हाहाकार करती हुई असीम वेदना उसके हृदय में कचोटने लगती है और कवि पुकार उठता है:—

"मानस सागर के तट पर क्यों लोल लहर की घातें।
कल-कल ध्वनि से हैं कहती कुछ विस्मृत बीती बातें।।"

स्मृति और चिन्ता से उत्पन्न मोह संचारी का भी अत्यन्त मार्मिक चित्र कवि अंकित करता है:—

"छिपगई कहाँ छूकर वे मलयज की मृदुल हिलोरें।
क्यों घूम गई हैं आकर करुणा कटाक्ष की कोरें।"

विषाद संचारी भाव प्रायः इष्ट हानि या कार्य की असफलता पर होता है। प्रस्तुत रचना मे कवि प्रियतम के अभाव में खिन्नावस्था का विषादयुक्त चित्र अंकित करता है:—

"लहरों में प्यास भरी है भँवर पात्र भी खाली,
मानस का सब रस पीकर लुड़का दी तुमने प्याली।
किंजल्क जाल हैं बिखरे उड़ता है पराग रूखा,
है स्नेह सरोज हमारा विकसा मानस में सूखा।"

इसी प्रकार 'आँसू' में ग्लानि, व्रीड़ा, औत्सुक्य अमर्ष, स्वप्न आदि कितने ही

संचारी भावों की सुन्दर अभिव्यंजना की है। 'आँसू' विप्रलंभ शृंगार का अनूठा काव्य है। इसमे समाविष्ट विविध मनोभावों के सभी चित्र 'रति' स्थाई भाव का पोषण करते हैं। इसमे करुण एवं शान्त रस शृंगार रस के सहायक होकर आये हैं। शृंगार रस के दोनो पक्ष संयोग एव वियोग (विप्रलम्भ) का समावेश इसमे किया गया है। 'आँसू' के आलम्बन पर किया नायिका को कवि ने विविध रूपों में चित्रित किया है। कहीं कही तो प्रियतम के अंग प्रत्यग का भी सुन्दर वर्णन, नख शिख-वर्णन के समान किया है:

"मुख कमल समीप सजे थे दो किसलय दल पुरइन के।
जल बिन्दु सदृश्य कब ठहरे इन कानों में दुःख किनके।।"

कवि नायिका के मुख, केश, अधर, दान्तो एवं नासिका आदि का चित्रण अनेक नवीन उपमाओ तथा अलंकारों के माध्यम से करता है: —

"बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से,
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरो से?"
"विद्रुम सीपी संपुट मे मोती के दाने कैसे?
है हस न शुक यह, फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे?"

यहाँ एक बात का उल्लेख 'आँसू' रचना के संदर्भ में अप्रासंगिक होगा। प्रायः प्रसाद के मित्र उनसे पूछा करते थे कि 'आँसू' काव्य का आलम्बन कौन है? स्त्री है अथवा पुरुष, क्योंकि प्रस्तुत रचना मे कवि ने प्रियतम को पुलिंग मे ही सम्बोधित किया है। 'आँसू' की एक प्रति मे प्रसादजी ने निम्नांकित पंक्तियाँ लिख दी थी: —

"ओ मेरे प्रेम बता दे तू नारी है कि पुरुष है।
दोनों ही पूछ रहे हैं, तू कोमल है कि परुष।।
उनको कैसे बतलाऊ तेरे रहस्य की बातें।
जो तुमको समझ चुके हैं, अपने विलास की बातें।।"

'आँसू' काव्य छायावादी लाक्षणिक-शैली में लिखा गया है। अतः कवि का विरह वर्णन कतिपय स्थलों पर प्रतीक विधान के कारण आध्यात्मिक (अज्ञात प्रियतम) की भ्रान्ति भले ही उत्पन्न करदे, किन्तु वस्तुतः 'आँसू' एक मानवीय काव्य सिद्ध होता है जिसकी परिणति अन्ततोगत्वा लोक-मंगल की भावना में हुई है।

'आँसू' का कला पक्ष —

'आँसू' काव्य मे जहाँ एक ओर विरह जन्य भावों की तीव्रानुभूति, उत्कट वेदना, उदात्त कल्पना तथा प्रेमपरक भावों का अक्षय भण्डार है, वहाँ दूसरी ओर उसमे छायावादी अभिव्यक्ति (कलापक्ष) का प्रौढ़ एवं परिष्कृत रूप भी दर्शनीय है।

भाषा विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है और भाषा का निर्माण पदों एवं शब्दों से होता है। जिस कवि का शब्द चयन जितना भावानुकूल होगा, उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही आकर्षक एवं सुन्दर होगी। द्विवेदी काल की कविता अभिधा प्रधान थी, किन्तु छायावाद काल में अभिधा का स्थान लक्षणा और व्यंजना शक्तियों ने ग्रहण किया। 'प्रसाद' ने 'आँसू' काव्य में लक्षणा और व्यंजना शक्ति के द्वारा ही अपने मनोरम भावों की अभिव्यञ्जना की है। भाषा के लाक्षणिक प्रयोग तथा व्यंजक शब्दों के अभिनव प्रयोग द्वारा 'प्रसाद' ने अपने अभिव्यक्ति पक्ष को ध्वन्यात्मकता प्रदान की है। 'आँसू' काव्य में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो अपने वाच्यार्थ से भिन्न किसी लक्ष्यार्थ की व्यंजना करते हैं जैसे–"शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृगजल का।" इस पंक्ति में ज्वाला से तात्पर्य आग से नहीं है आग तो उसका वाच्यार्थ है। यहाँ कवि ने हृदय को व्यथित करने वाली 'वेदना' के अर्थ में प्रस्तुत शब्द का प्रयोग किया है।

"झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ घेरा डाला॥"

उक्त पद में हृदय के अन्दर 'झंझा', 'बिजली' और 'नीरद माला' को बतलाया गया है, जो नितान्त असम्भव है। क्योंकि ये सब तो आकाश में स्थान पाते हैं। लक्ष्यार्थ जानने पर विदित होता है कि 'झंझा' से तात्पर्य तीव्र वेदना से उत्पन्न भयंकर भावों के तूफान से है, 'बिजली' यहाँ पीड़ा की द्योतक है और 'नीरदमाला' निराशा की ओर संकेत कर रही है।

'आँसू' रचना में कविवर 'प्रसाद' ने अनेक पदों में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ की भी अभिव्यक्ति की है ।:—

"बिजली माला पहने फिर मुसक्याता सा आँगन में।
हाँ कौन बरस जाता था रस बूंद हमारे मन में।"

इन पंक्तियों में वाच्यार्थ की दृष्टि से तो बिजली के चमकने और वर्षा होने का वर्णन है, लक्ष्यार्थ की दृष्टि में प्रियतम के बिजली जैसे अंगों की झलक दिखाई देने और मुस्कराकर रस बूंद बरसाने का भाव ज्ञात होता है, किन्तु व्यंग्यार्थ यह है कि जिस समय प्रेमी कवि अपने प्रियतम के अभाव में निराश एवं हताश होकर व्यथित एवं बेचैन होता था–उस समय वह स्मृति के रूप में आकर अपने रूप सौंदर्य की मनोहर छटा से प्रेमी कवि के मन को आनन्द विभोर कर देता है।

प्रतीक विधान हिन्दी काव्य में नवोन्मेष का द्योतन करने वाली छायावादी काव्य की अपनी विशिष्टता है। प्रतीक विधान की रचना करने वाले छायावादी

कवियों में प्रसादजी अग्रगण्य हैं। 'आँसू' काव्य में प्रयुक्त कुछ प्रतीक तो परंपरागत हैं और कुछ कवि की नूतन उद्भावनाओं के द्योतक हैं। उदा०–'विधु', 'काली जंजीरें', 'फणि' और 'हीरे' क्रमशः मुख, बालेवाल, वेणी और मांग के प्रतीक हैं। 'नीलम की प्याली' और 'मानिक मदिरा' क्रमशः काली आँखों और यौवन मद की लालिमा के प्रतीक हैं-ये सभी प्रतीक परंपरागत हैं। इसके अतिरिक्त कवि ने कतिपय ऐसे प्रतीकों की संयोजना की है जो काव्य मे भावों की नूतन उद्भावनाएं करते हैं। जैसे 'पतझड़', 'झाड़', 'सूखी फुलवारी', 'किसलय' 'नवकुसुम' और 'क्यारी' क्रमशः नीरसता, शरीर, शुष्क जीवन, सरसता, उल्लास और हृदय के प्रतीक हैं। इसी प्रकार अन्य कितने ही नूतन प्रतीकों का कवि प्रसाद ने 'आँसू' में प्रयोग किया है।

लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एवं सुन्दर प्रतीक विधान के अतिरिक्त कवि प्रसाद ने 'आँसू' काव्य में सुन्दर अप्रस्तुत योजना भी की है, जिसमें बाह्य साम्य की अपेक्षा अन्तर साम्य पर अधिक बल दिया गया है। अलंकार योजना के अन्तर्गत उपचार वक्रता का भी आश्रय लिया गया है। रूपकातिशयोक्ति अलंकार का वर्णन करते हुए कवि ने व्यथा के तीव्र वेग पीड़ा निराशा आदि अमूर्त भावों के लिए 'झंझा झकोर गर्जन', 'बिजली', 'नीरदमाला' आदि मूर्त उपमानों का प्रयोग करके अमूर्त भावों में मूर्त पदार्थों का आरोप किया है:—

"झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरदमाला,
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ घेरा डाला।"

प्रसाद ने उपचार वक्रता से भी काम लिया है और अचेतन पदार्थों में चेतनता का आरोपण कर अनेक पदों में मानवीकरण अलंकार की योजना की है। अनेक स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति सुन्दरी अपनी जड़ता त्यागकर मानव की भांति आनंद क्रीड़ा करती हुई चेतना सम्पन्न मानव व्यापारों से युक्त है:—

"हिलते द्रुमदल कल किसलय देती गलबाँही डाली।"

इसी प्रकार कहीं अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान प्रस्तुत किया है:–

'जीवन की जटिल समस्या है बढ़ी जटासी कैसी।"

अमूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान —

"जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।"

मूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान:—

"घन में सुन्दर बिजली सी बिजली में चपल चमक सी।"

उक्त कतिपय उद्धरणों में उपमा अलंकार की योजना में कवि ने विशेष कौशल दर्शाया है। इसके अतिरिक्त रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, दृष्टांत, भ्रांतिमान, विशेषण-विपर्यय आदि अनेक अलंकारों का 'आँसू' काव्य में प्रयोग हुआ है, जिनके उदाहरण लेख-विस्तार-भय के कारण प्रस्तुत नहीं किये जा रहे हैं।

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक प्रकृति और मानव का साहचर्य रहा है। अतः काव्य में प्रकृति का चित्रण मानव की सहचरी के रूप में ही अंकित हुआ है। फिर छायावाद का काव्य तो प्रकृति प्रधान ही है। प्रसाद के 'आँसू' काव्य में प्रकृति ने अपना विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। छायावादी कविता प्रतीक प्रधान है। अतः छायावादी कविता का अपना एक सुनिश्चित प्रतीक विधान था, जो प्रकृति के माध्यम से अपना प्रणय पर्यवेक्षण करता है। उदाहरणार्थ–'उषा', आह्लाद का बोध कराने वाला प्रतीकात्मक शब्द है। इसी प्रकार 'संध्या' और 'तिमिर' निराशा का प्रतीक है। 'आँसू' में प्रकृति के विरह-व्यथा-पूर्ण चित्र अधिक अंकित हुए हैं। कहीं रात्रि रुदन करती हुई आलोक बिन्दु के रूप में आँसू लगातार टपकाती है और तम की छलनायें उनको चुपचाप पी जाती हैः—

"रजनी को रोई आँखें आलोक बिंदु टपकातीं,
तम की काली छलनायें उनको चुप चुप पी जाती।"

कहीं बौना समुद्र शशि को छूने के लिए ललचाता है और हाहाकार करता हुआ बारबार पछाड़ खाता हैः—

"देखा बौने जलनिधि का शशि छूने को ललचाना,
यह हाहाकार मचाना, फिर उठ उठ कर गिर जाना।"

'आँसू' में प्रयुक्त छंद का नाम 'आनन्द' है। प्रसाद की मौलिकता के कारण इसे 'आँसू' छंद भी कुछ लोग कहते हैं। यह मात्रिक छंद है। इसमें २८ मात्राएँ होती हैं क्रमशः १४, १४ पर यति होती है। पदान्त में एक दीर्घ तथा एक लघु (ऽ।) का प्रयोग वर्जित है। प्रसाद ने इस लघु छंद में विरह वेदना का अथाह सागर भर दिया है जो 'गागर में सागर भरने' की उक्ति को चरितार्थ करता है। 'आँसू' के इस छंद में इतनी सुन्दर, लय, यति और गति है कि इसके नाद सौंदर्य के कारण मधुर संगीत की स्वरलहरी निनादित हो उठी है।

अन्त में डा० विजयेन्द्र स्नातक और डा० खण्डेलवाल के शब्दों में मैं यही कहूँगा कि 'आँसू' प्रसाद की एक अत्यन्त लोकप्रिय, सुगढ़, आत्मरस में परिप्लुत तरल कान्तिवान् व मधुकाय कला कृति है। इसमें जीवन का करुण कोमल पक्ष मूर्तिमान हो उठा है।

प्रिय-प्रवास' में नूतन उद्‌भावनाएँ

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आधुनिक काल के खड़ी बोली के कवियों में अग्रगण्य हैं। यद्यपि उन्होंने भरतेन्दु काल में ही काव्य रचना प्रारम्भ कर दी थी, किन्तु इस काल की उनकी रचनायें ब्रज भाषा की हैं। द्विवेदी काल में उन्होंने खड़ी बोली में अनेक ग्रंथ लिखे तथा उनका प्रसिद्ध महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। साथ ही संस्कृत वृत्तों में 'प्रिय-प्रवास' की रचनाकर उन्होने हिन्दी साहित्य मे एक नवीन शैली का प्रवर्तन किया। रचना शैली एवं विषय दोनों दृष्टियो से 'प्रिय-प्रवास' एक अद्वितीय काव्यकृति है। इस ग्रंथ में आधुनिक पुनर्जागरण की भावना सुन्दर रूप मे व्यंजित हुई है। कृष्ण काव्य की परम्परा मे यह प्रथम महाकाव्य है।

खड़ी बोली के प्रथम कवि श्रीधर पाठक माने जाते हैं तथा पाठक जी के बाद 'हरिऔधजी' का दूसरा स्थान है। 'हरिऔधजी' हिन्दी खड़ी बोली के उन्नायक थे। उन्होंने इसमे अनेक प्रयोग कर, प्रचुर मात्रा मे विविध प्रकार का साहित्य लिखा है। 'चुभते-चौपदे', 'चोखे-चौपदे', 'पद्य प्रसून', 'कल्प-लता', 'पारिजात' तथा 'वैदेही वनवास' आदि आपकी खड़ी बोली के विविध रूप प्रस्तुत करने वाली कृतियाँ हैं। आपने खड़ी बोली मे सर्वप्रथम मुहावरेदार, सरस, सुमधुर एवं व्यंग प्रधान रचनाएँ प्रस्तुत की। आपकी रचनायें तत्कालीन समाज की मनोवृत्ति एवं जनरुचि को प्रस्तुत करती हैं। 'हरिऔध' के ग्रंथों मे 'प्रियप्रवास' सर्वोपरि है। यह ग्रंथ कवि की असाधारण प्रतिभा का परिचायक है। यद्यपि 'प्रियप्रवास' का इतिवृत्त पूर्ववर्ती ग्रन्थों 'श्रीमद्‌भागवत' तथा 'सूरसागर' आदि के आधार पर है, किन्तु कवि ने लीक से हटकर नवीन एवं मौलिक विज्ञान सम्मत अनेक उद्‌भावनाएँ कर प्रस्तुत ग्रंथ को अभिनव एवं अभूतपूर्व रूप प्रदान किया है।

'प्रिय-प्रवास' में कवि ने श्री कृष्ण के मथुरा गमन का चित्र उपस्थित किया है। कंस के आदेशानुसार अक्रूर कृष्ण को लेने ब्रज में आते हैं। कृष्ण बलराम

तथा नन्द सहित मथुरा प्रस्थान करते हैं। कृष्ण के विरह में व्याकुल एवं व्यथित हो ब्रज के गोप गोपियाँ आँसू बहाते हैं। इसी कारण 'हरिऔध' ने प्रस्तुत ग्रंथ का नाम पहले 'ब्रजांगना-विलाप' रखा था। स्वयं कवि ने ग्रंथ की भूमिका में यह बात लिखी है। बाद में 'प्रिय-प्रवास' इस ग्रन्थ का नाम रख दिया गया। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रज के गोप-गोपियाँ श्री कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं को स्मरण एवं वर्णन करते हुए उनके गुणों का गान करते हैं। बस यही 'प्रिय-प्रवास' का कथानक है। कथा का प्रारम्भ दिवस के अवसान से होता है, जबकि कृष्ण अपने गोप-सखाओं के साथ गायों को लेकर घर की ओर लौट रहे हैं तथा ब्रजजन उत्सुकता पूर्वक उनके वंशीवादन को सुनकर उनके स्वागत को लालायित हैं। तभी अक्रूर के ब्रज में आने की बात उठ खड़ी होती है। 'भागवत' में अक्रूर के ब्रज में आने की पूर्व सूचना सबको है, किन्तु 'प्रियप्रवास' में अक्रूर के आने का समाचार कुछ गोपनीय रखा गया है तथा वह नन्द को अपने आने का अभिप्राय बतलाता है। इसके बाद यशोदा तो यह समाचार पाकर विषाद में डूब कर वात्सल्य भावना से प्रेरित हो बावली सी हो जाती है। कृष्ण के मथुरा गमन का जो दृश्य कवि ने प्रस्तुत किया है उस पर 'भागवत' की छाया परिलक्षित होती है। इस दृश्य को देख कर 'भागवत' में गोपिकायें विधाता को कोसती हैं। यहाँ 'हरिऔधजी' ने करुण रस की जो अजस्र धारा प्रवाहित की है वह सजीव एवं मर्मस्पर्शी है।

'प्रिय-प्रवास' के चतुर्थ सर्ग में राधा और कृष्ण का जो प्रेम सांकेतिक रूप में दरसाया है, वह 'भागवत' में कहीं नहीं मिलता है। 'भागवत' की भांति 'प्रिय-प्रवास' में भी कृष्ण को 'राजकार्य' में अत्यन्त व्यस्त दिखलाया गया है। हरिऔध ने कृष्ण के मन में ब्रज के स्मरण हो आने का प्रसंग बड़े कलात्मक एवं स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया है। एक दिन कृष्ण अपने गृह में उदास बैठे हैं—उनका मन रह रह कर ब्रज भूमि की स्मृति में उद्वेलित हो रहा है, कि ऊधो का आगमन होता है और कृष्ण से वे उदासी का कारण पूछते हैं, तब कृष्ण कहते हैं:—

> "शोभा सभ्रम शालिनी ब्रजधरा प्रेमास्पद गोपिका।
> माता प्रीतिमयी प्रतीति प्रतिमा वात्सल्य धाता पिता।
> प्यारे गोपकुमार प्रेम मणि के पयोधि से गोप वे।
> भूले हैं न सदैव याद उनकी देती व्यथा हैं हमें।"

पूर्ववर्ती अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण द्वारा ऊधो के ज्ञानाभिमान को तिरोहित करने हेतु ब्रज में भेजने की बात कही है, किन्तु 'प्रिय-प्रवास' में ऐसी कोई

बात प्रकट नहीं की गई है। ऊधो ज्ञानी होने के साथ ही सहृदय भी हैं तथा अपने प्रिय मित्र के प्रति कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर वे व्रज भूमि के लिए प्रस्थान करते हैं। ऊधो की व्रज की यात्रा के समय प्रकृति का विस्तार पूर्वक चित्रण किया गया है। व्रज में ऊधो के आगमन पर व्रजवासियों के हर्ष एवं जिज्ञासा-पूर्ण हृदय का बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है। व्रज के नर और नारी, पशु पक्षी अपना कार्य छोड़कर ऊधो के रथ को आकर घेर लेते हैं।

"जहाँ लगा जो जिस कार्य में रहा। उसे वहाँ ही वह छोड़ दौड़ता।
समीप आया रथ के प्रमत्तता। विलोकने को घनश्याम माधुरी।
विलोकते जो पशुवृंद पथ को। तजा उन्होंने पथ का विलोकना।"

× × × ×

"तजा किसी ने जल का भरा घड़ा। उसे किसी ने सिर से गिरा दिया।
अनेक दौड़ी सुधि गात की गवां। सरोज सा सुन्दर श्याम देखने।"

गोवर्धन धारण की 'भागवत' की अलौकिक घटना को 'हरिऔध' ने तर्कसंगत और बुद्धि ग्राह्य बनाने के हेतु अलंकारिक चमत्कार सहित प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार की अनेक घटनाओं को 'हरिऔध' ने अभिनव उद्‌भावनाओं द्वारा नूतन दृष्टि दी है।

'प्रिय-प्रवास' में कृष्ण और राधा का चरित्र परम्परा से हटाकर नये संदर्भ में चित्रित किया गया है। 'हरिऔध' ने इस ग्रन्थ में कृष्ण को परब्रह्म परमात्मा के रूप में चित्रित न करते हुए, उन्हें एक श्रेष्ठ मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें कृष्ण लोकसेवक, जनहितैषी, त्यागी, कर्त्तव्य-निष्ठ, सच्चे नेता के रूप में चित्रत किये गये हैं। वास्तव में कृष्ण का चरित्र युगानुकूल है। वे व्रज के रक्षक एवं मानवता के संरक्षक हैं। इसीलिये व्रज पर जब आपत्तियां आती हैं तो अपने प्राणों की बाजी लगाकर व्रज की रक्षा करते हैं। स्वजाति उद्धार को ही वे अपना परमधर्म मानते हैं। शकटासुर, बकासुर आदि अनेक दुष्टों का दलन कर वे व्रज को कष्टों से बचाते हैं।

प्रियप्रवास' की राधा भी श्रीकृष्ण के समान ही अपने प्राचीन परम्परागत रूप का परित्याग कर एक जन-सेविका एवं देश भक्त नारी के रूप में सामने आती है। साथ ही स्त्रियोचित गुणों से वह परिपूर्ण है। कृष्ण के प्रेम से रंजित हो वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का दमन कर निजी प्रेम का उत्सर्ग कर देती है और अपने आप को लोकोपकार में लगा देती है। 'प्रिय-प्रवास' की राधा रीतिकालीन एवं भक्तिकाल की राधा से भिन्न है। वह कृष्ण से मिलने की कामना न करते हुए

मोर देखा मैं रहती है । उनसे मैं भी यह नहीं कहती है : —

"हमारे जीवैं उमाहिं करैं देह नाहिं न साथैं ।"

हिन्दी साहित्य में कृष्ण सम्बन्धी काव्य का सूत्रपात इसी शताब्दी में 'विद्यापति' की 'पदावली' से हुआ है । मैथिल कोकिल विद्यापति ने अपनी पदावली में कृष्ण का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह एक प्रेमी और चतुर नायक का रूप है । सूर विद्यापति के पश्चात् सूरदास ने कृष्ण के जीवन का विस्तृत वर्णन किया है । सूर ने गीता' के योगेश्वर कूटनीतिज्ञ कृष्ण का रूप प्रस्तुत न करते हुए मनोहर और नन्द के दुलारे, अनुपम सौन्दर्य से युक्त, चंचल नटनागर, माखन-चोर, रासरचाने वाले, गोपीवल्लभ, चराचर को मुरली की तान पर मन-मुग्ध करने वाले कृष्ण का चित्रण स्थल स्थल पदों में किया है । कहीं कहीं उन्होंने कृष्ण के अलौकिक रूप की भी झांकी प्रस्तुत की है । सूर के पश्चात् रीतिकालीन कवियों ने कृष्ण का कामुक, प्रेमी नायक का चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें न तो सूर के आराध्य बाल कृष्ण के सौंदर्य शाली रूप की ही झांकी प्राप्त होती है और न योगेश्वर कृष्ण की ही झलक मिलती है । इस प्रकार आधुनिक काल के कवियों के सामने भी कृष्ण के दो रूप थे । कुछ कवि सूर के कृष्ण का मनोहारी चित्र प्रस्तुत कर रहे थे कुछ रीतिकालीन परम्परा का निर्वाह करते हुए विलासी और कामुक नायक के रूप में उन्हें चित्रित कर रहे थे । 'हरिऔधजी' ने देखा कि भक्तिकाल और रीतिकाल के कृष्ण में लोकरक्षक और लोक-संग्रही रूप का अभाव है । लगता है उन्होंने इसी अभाव की पूर्ति करने के लिए 'प्रिय-प्रवास' की रचना की ।

'हरिऔधजी' ने कृष्ण को न तो कृष्ण भक्तों के आराध्य परमब्रह्म परमात्मा के रूप में चित्रित किया और न रीतिकालीन परम्परा का ही निर्वाह किया । यद्यपि 'प्रियप्रवास' में कृष्ण के मुरली, रास-विहारी, माखन चोर, विनोदी आदि रूपों की भी चर्चा की है, किन्तु वह लेखक का उद्देश्य नहीं है । कुल मिलाकर 'हरिऔध' ने कृष्ण के लोक संग्रही एवं लोक रक्षक रूप पर ही अधिक बल दिया है । 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण मनुष्येत्तर कोई देवता या अवतार के रूप में चित्रित नहीं किये गये हैं । वे जनता की रक्षा करने वाले, मृदु-भाषी, कर्त्तव्यपरायण, गोप-गोपियों के हृदय में निवास करने वाले ब्रज-भूमि के संरक्षक के रूप में ही चित्रित किये गये हैं । अलौकिक और असाधारण कृष्ण के रूप का परित्याग कर 'हरिऔध' ने मानवता की भावना से परिपूर्ण, आदर्श व्यक्ति के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया है ।

'प्रिय-प्रवास' में कृष्ण के चरित्र में कर्त्तव्य परायणता, ओजस्विता एवं जननी जन्मभूमि के प्रति सेवा भाव है । कालिया नाग द्वारा ब्रज वासियों को नष्ट

होता हुआ देख कर कृष्ण का हृदय पीड़ा से व्याकुल हो जाता है और वे तुरन्त निश्चय कर लेते हैं कि स्वजाति को इस कष्ट से मुक्ति दिलानी चाहिए। वे स्वयं कहते है :—

"सदा करूँगा अाप मृत्यु सामना।
सभीत हूँगा न सुरेन्द्र व्रज से।
कभी करूँगा अवहेलना न में।
प्रधान धर्माङ्ग परोपकार की।"

'प्रिय-प्रवास' में कृष्ण की कर्त्तव्य भावना स्वजाति तक ही न सीमित रहकर विश्व की मानवता तक परिव्याप्त है। उनके हृदय मे विश्व प्रेम की भावनाएँ हिलोरें ले रही हैं तथा वे जगत के सर्व प्राणियो के हितैषी हैं :—

"वह जी से है अवनि जन के प्राणियों के हितैषी
प्राणों से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।"

'प्रिय-प्रवास' का मूल उद्देश्य लोक सेवा का सामाजिक आदर्श प्रस्तुत करना है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति कवि ने कृष्ण के अलौकिक रूप का परित्याग कर एक आदर्श मानव लोक रक्षक के रूप मे उन्हें प्रस्तुत कर की है।

राधा का विकास साहित्य मे कब और कैसे हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सर्वप्रथम नवीं शताब्दी में राधा का उल्लेख मिलता है। 'ध्वन्या लोक', 'गाथा सप्त-शती', 'पचतन्त्र' आदि ग्रन्थों मे राधा का कुछ चित्रण हुआ है। जयदेव के 'गीति-गोविंद' मे राधा अपूर्व सुन्दरी एवं श्री कृष्ण की प्रेमिका एवं वियोगिनी के रूप मे चित्रित की गई है। इसके पश्चात् चण्डीदास ने राधा को एक परकीया नायिका के रूप में कृष्ण के साथ अभिसार, विहार करने वाली बतलाया है। चण्डीदास के बाद विद्यापति ने अपने काव्य मे राधा को एक किशोरी मुग्धा, विलास प्रिय परकीया नायिका के रूप मे चित्रित किया है। सूर की राधा चण्डीदास और विद्यापति की राधा से नितान्त भिन्न है। डा० रामरतन भटनागर के शब्दो में "सूरदास की राधा न तो चण्डीदास की राधा की तरह परकीया है और न विद्यापति की राधा की तरह प्रेयसी है। वह न असाधारण गोपी है और न कृष्ण की पत्नी है। नायिका भेद की परिभाषा मे हम उसे स्वकीया कहेंगे।" कहने का तात्पर्य यह है कि सूर की राधा संयोग के समय कृष्ण के साथ आनन्द क्रीड़ा करने वाली रास रचाने वाली है तथा वियोग मे शोक संतप्त रहने वाली एक उपासिका एवं तपस्विनी भव्य नारी है।

कृष्ण भक्त कवियों के पश्चात रीतिकाल में आकर कवियों ने राधा की

चित्रण एक विलासपूर्ण नायिका के रूप में किया है। वह नाना कलाओं से यु कामक्रीड़ा निपुण परम सुन्दरी के रूप में चित्रित की गई है। उसके चरित्र पवित्रता का अभाव है। रीतिकाल के उपरान्त भी ब्रज भाषा काव्य में राधा क चित्रण रीतिकालीन कवियों के समान ही होता रहा। द्विवेदी काल में नैतिकता क भावना का प्राबल्य होने के कारण नारी के प्रति शनैः शनैः आदर भाव जाग्र हुआ एवं नारी के प्रति साहित्यकारों के भावों मे परिवर्तन हुआ। युग की इ भावना का प्रभाव 'हरिऔधजी' पर भी पड़ा। 'हरिऔधजी' ने अपने को न त पौराणिक मर्यादाओं की सीमा में आवद्ध किया और न रीतिकालीन कवियों की परम्परा का ही निर्वाह किया। 'हरिऔध' ने कृष्ण के चरित्र के समान ही राधा के चरित्र मे भी अनेक मौलिक उद्भावनाएं की हैं और उसके चरित्र में भी कर्त्तव्य पालन, परोपकार, लोकसेवा एवं विश्व प्रेम आदि उदात्त भावनाओं का समावेश किया है।

'प्रिय-प्रवास' मे राधा और कृष्ण का बालकपन का स्नेह किशोरावस्था मे जाकर प्रणय का रूप ग्रहण कर लेता है। किंतु इस प्रेम में वासना की गंध तनिक भी नहीं है, अपितु शुद्धता एवं पवित्रता है। 'हरिऔध' का यही प्रतिपाद्य विषय है जो शनैः शनैः विकास प्राप्त करता है—

> "युगल का वय साथ स्नेह भी, निपट नीरवता संग था बढ़ा
> फिर वही वर बाल स्नेह भी, प्रणय में परिवर्तित हो गया।"

मोह मग्न राधा के हृदय मे धीरे धीरे उदात्त भाव जाग्रत होते हैं। वह अपनी कामनाओं का दमन कर त्याग की देवी बन जनहित मे लीन हो जाती है। उसका हृदय ईश्वरानुभूति के प्रकाश से आलोकित हो लोकसेवा एवं जन सेवा में लग जाता है। उसका प्रेम विश्व के पदार्थों मे व्याप्त हो ईश्वरानुभूति करता है:—

> "पाई जाती विविध जितनी वस्तुएं हैं सबों में,
> मैं प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूं
> तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूंगी।"

'प्रिय-प्रवास' की राधा सामाजिक बन्धनों से ऊपर उठी हुई है। वह प्रगतिशील, गरिमामयी, शालीन एवं शिष्ट नारी रत्न है। नन्ददास की राधा की भांति न तो वह तर्कशील है और न सूर की राधा की भांति उद्धव का उपहास करने वाली और व्यंग बाणों की झड़ी लगा देने वाली है। ऊधो के बजागमन पर वह अपनी शालीनता का पूर्ण परिचय देती है:—

"स प्रीति वे आदर के लिए उठीं
विलोक आता ब्रजदेव बन्धु को।
पुनः उन्होंने निज शांत कुंज में
उन्हें बिठाया अति भक्ति भाव से।"

यों तो राधा के प्रेम में मिलन उत्कण्ठा भी पाई जाती है--

"होते मेरे प्रबल तन में पक्ष जो पक्षियों से
तो यो ही मैं समुद उड़ती श्याम के पास जाती।"
"जो हो जाती पवन गति या वांछित लोक प्यारी
मैं छू आती परम प्रिय के मंजुपदाम्बुजों को"

'प्रिय-प्रवास' की राधा का प्रेम वियोगाग्नि में तप कर शुद्ध होकर सात्विक शीलता को प्राप्त होता है। उसकी अनासक्त भावना ईश्वरानुभूति में परिणत हो विश्व के नाना रूपों में समा जाती है —

"पाई जाती विविध जितनी वस्तुएँ हैं सबों में
मैं प्यारे के अमित रंग औ रूप मे देखती हूँ।
तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूंगी।
यों मेरे हृदय तल में विश्व का प्रेम जागा।"

यद्यपि हरिऔध' ने राधा के विरह वर्णन मे परम्परागत विरह को सम्पूर्ण अन्तर्दशाओं का भी समावेश किया है। किन्तु अपनी मौलिक उद्भावनाओं द्वारा राधा को जो अभिनव और उदात्त रूप प्रदान किया है वह अप्रतिम एवं अभूतपूर्व है। राधा और कृष्ण दोनों के चरित्रों मे आत्मोत्सर्ग की तीव्र भावना है। यदि श्री कृष्ण जन जन की पीड़ा एवं कष्टों के निवारणार्थ जगहित के कार्यों मे लीन हैं, तो राधा भी निष्काम भाव से ब्रज के वृद्ध एवं रोगी जनों की सेवा सुश्रूषा एवं सान्त्वना प्रदान करने में अपना सारा समय निःशेष कर देती है। पवन द्वारा राधा जो संदेश कृष्ण को भेजती है उसमे भी लोक कल्याण एवं पर दुःख कातरता का ही आधिक्य है।

नवधा भक्ति के निरूपण मे भी 'हरिऔधजी' ने अनेक नवीन एवं मौलिक उद्भावनाएँ की है। परम्परागत चली आ रही नवधा-भक्ति की प्राचीन परिपाटी (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवा, अर्चना, वंदना, सख्य, दास्य और आत्म निवेदन) को कवि ने नव स्वरूप एवं नई परिष्कृति प्रदान की है। उदाहरणार्थ किसी रोगी दुःखी व्यक्ति की बातें सहानुभूति पूर्वक सुनना श्रवण भक्ति है। विद्वान, गुणी, देशप्रेमी एवं दानी आदि के प्रति सादर नतमस्तक होना ही वंदना भक्ति है। इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'हरिऔध' ने 'प्रिय-प्रवास' में राधा और कृष्ण के चरित्र को लोक प्रचलित रूप से भिन्न एक अनुपम एवं नवीन दृष्टिकोण से अंकित किया है। उनके चरित्रों में लोकसेवा का आदर्श एवं विश्व प्रेम की प्रतिष्ठापना भी है। क्या कथानक, क्या चरित्र चित्रण, क्या विषय वस्तु एवं शैली सभी में नवीनता है। इसकी अलंकरण योजना एवं छंद विधान भी अनुपम एवं अनूठा है। संस्कृत की ललितकान्त वर्णवृत्तों की मधुर छटा से युक्त वर्णिक छंदों का सर्वत्र प्रयोग कर 'प्रियप्रवास' को कवि ने एक अभिनव रूप प्रदान किया है।

•

---

६ 'साकेत' की विरहिणी उर्मिला

अनेक शताब्दियों तक उर्मिला साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित रही। आधुनिक काल में रवीन्द्र नाथ ठाकुर के 'काव्य की उपेक्षिता' लेख से प्रभावित होकर तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक लेख से उत्प्रेरित हो गुप्त जी ने 'साकेत' महाकाव्य लिखा। उर्मिला की असीम विरह वेदना से कवि गुप्त की हृदय वीणा के तार झंकृत हो उठे और करुण रागिनी फूट पड़ी। कविगुप्त ने अपनी समस्त सहानुभूति करुणा की देवी उर्मिला के प्रति अभिव्यक्त की है। कवि की आत्मा उर्मिला का विरह निवेदन करने मे अत्यधिक रमी है। इसी कारण 'साकेत' महाकाव्य का नवम सर्ग अत्यन्त विषद एवं महत्त्वपूर्ण है। इस सर्ग मे गुप्त जी का काव्य वैभव एवं उर्मिला का त्यागमय विरह अत्यन्त उच्चकोटि का है। उर्मिला ही 'साकेत' की नायिका है, वही इस ग्रन्थ की आत्मा है और उसी के चरित्र को चमकाने मे कवि ने अपना सम्पूर्ण कौशल दर्शाया है।

'साकेत' महाकाव्य मे यद्यपि उर्मिला के चरित्र को 'राम, लक्ष्मण, सीता, कैकेयी, भरत आदि पात्रों के बीच विकसित किया है, किन्तु काव्य की नायिका मानकर उसे सर्वोपरी स्थान दिया गया है। वह करुणा की प्रतिमूर्ति है तथा कवि की सहानुभूति प्रमुख रूप से उसी के प्रति अभिव्यक्त हुई है—

"उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन रस के लेप से
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से।"

महाकाव्य के प्रारंभ में ही उर्मिला के चरित्र की झांकी हमें मिलती है। वह उसके जीवन का वसंत काल है। वह एक नववधू और प्रेममयी आदर्श युवती के रूप में अधरों पर स्मित रेखा लिये लक्ष्मण से वाग्विनोद एवं हास्य परिहास करती हुई दृष्टिगोचर होती है। चित्रकला में वह अत्यन्त कुशल है। श्रीराम के राज्याभिषेक से पूर्व ही उसने कल्पना से एक अद्वितीय चित्र अंकित किया है जिसे देख कर लक्ष्मण मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। लक्ष्मण और उर्मिला की संयोगावस्था को

हास-परिहास से युक्त यह मधुर झाँकी दीर्घकाल तक दिखाई नहीं देती। दूसरे ही सर्ग में दुर्बुद्धि मंथरा 'भरत से सुत पर भी संदेह' कह कर कैकेयी को दशरथ से वर माँगने के लिए प्रेरित करती है। परिणाम स्वरूप राम का राज्याभिषेक होते होते रुक जाता है और वनगमन का दृश्य उपस्थित होता है। सीता राम की सहगामिनी बनती है और लक्ष्मण भी अपने बड़े भाई के सहगामी बनते हैं।

'साकेत' के प्रथम सर्ग में जो उर्मिला अधरों पर मधुर मुस्कान धारण किये दृष्टिगोचर होती है, वहीं उर्मिला चतुर्थ सर्ग में वनगमन के प्रसंग में विषाद से दुखी हुई दिखलाई देती है। लक्ष्मण का मन आशंकित है 'प्रभुवर बाधा पायेंगे, छोड़ मुझे भी जायेंगे,' अतः वे उर्मिला को अयोध्या में ही रहने का आदेश देते हैं—

"रहो-रहो, हे प्रिये ! रहो।
यह भी मेरे लिए सहो
और अधिक क्या कहूँ कहो ?"

उर्मिला विवश हो एक आदर्श पतिपरायणा नारी की भाँति पति की आज्ञा को शिरोधार्य कर, अपने हृदय पर पत्थर रख अपने मन को समझाती है —

"हे मन !
तू प्रिय पथ का विघ्न न बन !
आज स्वार्थ है त्याग भरा
हो अनुराग विराग भरा।"

लक्ष्मण वियोगजयी होकर राम-सीता के साथ वन चले जाते हैं और उर्मिला एकाकी प्रेम की प्रतिमूर्ति बनकर मौन रह जाती है। वह लक्ष्मण के साथ वन जाने का अनुरोध इसलिए नहीं करती, क्योंकि वह पति की अनन्य सेवा एवं अपूर्व साधना में व्यवधान नहीं बनना चाहती। स्वयं सीता और कैकेयी उसके असीम दुःख का भान करते हुए उसके प्रति संवेदनशील हैं। सीता उसके भाग्य की विडम्बना को देखकर कहती है :—

"आज जो भाग्य है मेरा।
वह भी हुआ न हा ! तेरा।।"

कैकेयी भी चित्रकूट की सभा में स्वीकार करती है—

"आ, मेरी सबसे अधिक दुखिनी आजा,
पिस मुझ से चंदनलता मुझी पर छाजा।"

नारी के जीवन की पूर्ति पति है। उर्मिला पति के अभाव की पूर्ति, आँसुओं द्वारा प्राप्त करती है। वह उसे (आँसूको) संभाल कर नहीं रख पाती है।

लक्ष्मण राम के साथ वन प्रस्थान करते हैं और उर्मिला विवश एवं निरुपाय विरहाग्नि में तड़पने के लिए एकाकी रह जाती है। चित्रकूट में लक्ष्मण और उर्मिला का क्षणिक मिलन सीता के लाघव से होता है। उर्मिला पति वियोग में कृश काय हो गई है। लक्ष्मण विस्मय से देखते हैं और उन्हें भ्रम होने लगता है कि यह उर्मिला की प्रतिमा है या उसकी छाया मात्र। कर्तव्य की भावना से परिपूर्ण अनुराग की प्रतिमूर्ति बन वह लक्ष्मण से केवल यही कहती है—

> "मेरे उपवन के हरिण आज वनचारी।
> मैं बाँध न लूँगी तुम्हें, तजो भय भारी।।"

उर्मिला के इन शब्दों को सुनकर जैसे लक्ष्मण के हृदय का बाँध सहसा टूट पड़ता है :—

> "गिर पड़े दौड़ सौमित्र प्रिया पदतल में।
> वह भीग उठी प्रिय चरण धरे दृगजल में।"

उर्मिला के महान त्याग और तपस्या के सामने लक्ष्मण नत मस्तक हो गये और उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े :—

> "वन में तनिक तपस्या करके बनने दो मुझको निज योग्य
> भाभी की भगिनि तुम मेरे अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।"

उर्मिला भावों के आधिक्य में केवल इतना ही कह सकी—

> "हा स्वामी जितना कहना था कह न सकी कर्मों का दोष
> पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो, मुझे उसी में है परितोष।"

कर्त्तव्य की भावना से परिपूर्ण एवं प्रेम की आकुलता से पूर्ण यह लक्ष्मण और उर्मिला का चित्रकूट का मिलन 'साकेत' महाकाव्य की एक अपूर्व घटना है। इसके पश्चात कवि ने नवम सर्ग में उर्मिला का अत्यन्त कारुणिक चित्र अंकित किया है। शनैः शनैः उर्मिला का विरह बल प्राप्त करता है। अब वह पूर्ण रूप से प्रोषित पतिका एवं वियोगिनी नायिका के रूप में दिखाई देती है विरह वेदना में तप कर वह और उसका प्रेम अधिक निर्मल और कान्तिमान हो जाता है। वेदना उसे प्रिय का स्मरण कराने के कारण मधुर प्रतीत होती है :—

> "वेदने तू भली बनी।
> पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह ध
> मनसा मानिक मुझे मिला है तुझ में उपल
> तुझे तभी छोड़ूँ जब सजनी, पाऊँ प्राण ध

गुप्तजी ने उर्मिला के विरह वर्णन में प्राचीन ग्रौर नवीन दोनों प्रकार की शैलियों का समावेश किया है। जहाँ एक ग्रोर उन्होंने विरहताप का प्राचीन परिपाटी के ग्रनुसार ऊहात्मक वर्णन तथा षट्ऋतु आदि का समावेश किया है तो वहां दूसरी ग्रोर नवीन उद्भावनाग्रों का संवेदात्मक एवं मौलिक चित्रण भी किया है।

महात्मा गाधी को चाहें उर्मिला की विरह व्याकुलता ग्रप्रिय प्रतीत हुई हो, किन्तु गुप्त जी तो उसे ग्रपने काव्य की विभूति ही मानते हैं:—

"करुणे क्यों रोती है ? उत्तर में ग्रौर ग्रधिक तू रोई,
मेरी विभूति है जो, उसको भवभूति क्यों कहे कोई।"

उर्मिला का प्रेम एकनिष्ट है, क्योंकि वह पतिपरायण हिन्दूनारी है—वह ग्रपने हृदय रूपी मंदिर में प्रिय की मूर्ति स्थापित कर उसके विरह में स्वयं ग्रारती बन ग्राहुत है—

"मानस मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाम।
जलती थी उस विरह में, बनी ग्रारती ग्राप।।"

उर्मिला के मानस की वेदना ग्रागे चलकर फूट पड़ती है ग्रौर प्रकृति के ग्रणु ग्रणु मे वह व्याप्त हो जाती है। प्रकृति के प्रत्येक उपादान से उसे मोह है क्योंकि प्रकृति के माध्यम से वह प्रियतम के दर्शन प्राप्त कर लेती है :—

"निरख सखी ये खंजन ग्राये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।
फैला उनके तन का ग्रातप, मन ने सर सर साये,

× × × ×

स्वागत, स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये।"

दीपक के जलने मे तथा पतंगे के उस पर ग्रात्मोत्सर्ग करने मे उसे ग्रपने ही जीवन की झांकी मिलती है :—

"दीपक के जलने में ग्राली
फिर भी है जीवन की लाली
किन्तु पतंग भाग्य लिपि काली
किसका वश चलता है।"

प्रकृति में ऋतुपरिवर्तन होना स्वाभाविक है। किन्तु उर्मिला को ग्रपनी विरह दशा में वह कुछ ग्रौर भी प्रतीत होता है। ग्रीष्म के ताप का होना वह

लक्ष्मण के तप का ताप समझ कर कहती है :—

"मन को यों मत जीतो
बैठी है यह यहां मानिनी, सुधि लो इसकी भी तो।"

उर्मिला के विरह में हृदय का विस्तार एवं उदासता भी दिखलाई देती है। वह नगर की समस्त प्रोषितपतिकाओं के प्रति संवेदना से परिपूर्ण है :—

"प्रोषितपतिकाएं हों जितनी भी
सखि उन्हें निमंत्रण दे आ,
समदुखिनी मिलें तो दुख बटे
जा प्रणय पुरस्सर ले आ।"

उर्मिला की वेदना का प्रसार पेड़-पौधों, पशु-पक्षी, कीट पतंग तक हुआ है :-

"सखि विहंग उड़ादे, हों सभी मुक्ति मानी"

कभी तोते से कहती है :—

"कह विहंग कहां हैं आर्याय तेरे
सचमुच मृगया में ! तो अहेरी नये वे।
यह हत हरिणीयों छोड़ गयों ही गये वे।"

उसकी संवेदना मकड़ी और जुगनू के प्रति भी है—

"सखि हटा न मकड़ी को,
आई है वह सहानु-भूति वश।'
"तप में तू भी कम नहीं जो जुगनू बड भाग।"

जायसी की नागमती (पद्मावत में) का भाव विस्तार भी कम नहीं है। वह वन उपवन पशु पक्षी सभी के सामने अपना दुखड़ा रोने लगती है—

"तू फिर फिर दाहे सब पांखी,
केहि दुख रैनि न लावसि पांखी।"

प्रोषित पतिका उर्मिला अपने स्वामी की मूर्ति को मानस में प्रतिष्ठापित कर स्वयं आरती की ज्वाला बन कर जलती है तो जायसी की नागमती अपने शरीर को जलाकर राख बना प्रियतम के मार्ग में बिछाने की कामना करती है-

"यह तन जारो छारि कै, कहों कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कन्त धरै जह पांव।"

गुप्त जी ने उर्मिला के हृदय की व्याकुलता का सुन्दर निर्वाह किया है। जायसी की नागमती की भांति न तो [illegible] के साथ [illegible] ही मिलता

पशु-पक्षियों से प्रति उत्तर ही दिलवाया। वास्तव में सूफी कवियों की 'प्रेम की पीर' एवं विरह जन्य वेदना ही उनके काव्य का मूल विषय है।

संस्कृत के प्राचीन कवियों ने वियोगिनी की ग्यारह अन्तर्दशाएँ बतलाई हैं — अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, व्याधि, मूर्च्छा मरण। गुप्त जी ने उर्मिला के विरह चित्रण में इन अन्तर्दशाओं का भी समावेश किया है। उर्मिला के हृदय में प्रिय से मिलने की तीव्र उत्कंठा है—

"यही आता है इस मन में
छोड़ धन धाम जाके मैं भी रहूं उसी बन में।"
"आप अवधि बन सकूं कहो तो क्या कुछ देर लगाऊँ
मैं अपने को आप मिटा कर जाकर उनको लाऊँ।"

उर्मिला को विगत जीवन की घटनाएँ स्मरण हो आती हैं। चित्रकूट के प्रसंग में उर्मिला कहती है—

"मिली मैं स्वामी से, पर क्या कह सकी संभल के,
बहे आंसू हो के सखि सब उपालंभ गल के।"

उद्वेगावस्था में विरहिणी उर्मिला को सुखदायी वस्तुएँ भी दुखदायी प्रतीत होती हैं:—

"वह कोयल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष वृष्टि करती है।"

विप्रलम्भ की स्थिति में उर्मिला को प्रियतम की स्मृति हो आती है और उसकी जिव्हा पर बरबस हो प्रिय के गुण, वीरता, सौंदर्य और हास परिहास की बातें आजाती हैं:—

'हूँ हूँ। कह लिपटगये थे यहीं प्राणेश्वर
बाहर से सकुचित भीतर से फूले से।"

प्रियतम की मधुर स्मृतियों में डूबकर वह वियोगावस्था में उन्मत्त हो व्यथित हो उठती है:—

"मुझे फूल मत मारो
मैं अबला बाल वियोगिनी कुछ तो दया विचारो।"

वह विरहाधिक्य के कारण अपनी स्थिति को भूलकर असंगत प्रलाप करने [illegible]। वह कभी भोजन लाने को कहती है, कभी निंदिया को बुलाती है और [illegible] को संबोधित करती है:—

"भ्रमरी..........मधु पीकर और मदांध न हो,
उड़जा, बस है अब क्षेम तभी।"

अन्त में उर्मिला तीव्र भावों के जाल में फंसकर व्यथित हो उठती है और विस्मृति उसे आ घेरती है तथा वह मूर्च्छित सी हो जाती है। नारी सुलभ भिन्न भिन्न मनोविकारों पर नियन्त्रण प्राप्त कर वह आदर्श नारी के रूप में हमारे सामने आती है। विरह की प्रखरता उसे जब अर्द्ध मूर्च्छित बना देती है तब वह स्वयं चौंक पड़ती है और अपनी सखी से पूछती है—

"क्या क्षण क्षण में चौंक रही मैं।"

कभी अनुभूति की तीव्रता के कारण वह संज्ञाहीन होकर कहती है—

"सुभग आगये कंत आगये,
त्वरित ला आरती उतार लूँ
पद दृगम्बु से पखार लूँ।"

षट्ऋतु परिवर्तन का प्रभाव भी विरहिणी उर्मिला के हृदय के भावों को उद्दीप्त करता है। ग्रीष्म के बाद पावस का आगमन उसके हृदय में अनेक भावों की सृष्टि करता है।

"बरस घरा बरसूं में संग
सरसै अवनि के सब संग।"

उर्मिला के विरह में एक ओर आदर्श की भावना है तो दूसरी ओर स्वार्थ का त्याग है, किन्तु फिर भी उसके व्यक्तित्व का लोप नहीं होता। उर्मिला का महान त्याग प्रिय प्रवास की राधा का भी स्मरण करा देता है। राधा कृष्ण के विरह में व्याकुल होकर इधर उधर मारी मारी नहीं फिरती है, अपितु लोक हित में संलग्न हो गोप-गोपियों तथा दीन हीनों की सेवा सुश्रूषा में निरत रहती है। उसे श्री कृष्ण के ब्रज में लौट आने की भी चिन्ता नहीं है और वह श्री कृष्ण के लोकहित में निरत रहने की ही कामना करती है :—

'प्यारे जीवें जग हित करें, गेह चाहें न आवें।"

राधा शनैः शनैः व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर विश्वात्मा में लीन होजाती है। किन्तु उर्मिला को अपनी स्थिति का ध्यान बना रहता है, और यह उचित प्रतीत होता है, क्योंकि राधा का विरह चिरन्तन है और उर्मिला का सावधि। उर्मिला को अपने प्रियतम से मिलने की पूर्ण आशा है। अतः अपने व्यक्तित्व का भी उसे भान है, यौवन जिसका एक अंश है। किन्तु यौवन की भावना केवल प्रियतम के लिए है—

"मन पुजारी और तन इस दुखनी का थाल,
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल।"

प्रिय प्रवास की राधा के विरह में शालीनता है, परमार्थ है, मानव प्रेम है, लोक सेवा एवं लोक मंगल की उदात्त भावना है। उर्मिला में भी नारी सुलभ सुकोमलता एवं शालीनता है, वह धैर्य की सजीव प्रतीमा है, वह पतिपरायणता, त्यागमयी भारतीय नारी होने के साथ एक वीर पत्नी भी है। लक्ष्मण के शक्ति लगने का अप्रिय समाचार प्राप्त होने पर वह वीर वेश धारण कर सबसे आगे चलना चाहती है और कहती है—

"ठहरो, यह मैं चलूँ कीर्ति सी आगे आगे,
भोगें अपने विषय कर्म फल अधम अभागे।"

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के पश्चात हम कह सकते हैं कि कवियों द्वारा अनेक शतियों तक उपेक्षित रहने के बाद उर्मिला गुप्तजी की प्रतिमा का स्पर्श प्राप्त कर 'साकेत' महाकाव्य की नायिका बनने में सक्षम है। कथा की संयोजना, चरित्र विकास और फल प्राप्ति की दृष्टि से भी उर्मिला को 'साकेत' का नेतृत्व प्राप्त है। प्रस्तुत छंद में कवि का भाषा सौष्ठव, अभिव्यंजना शक्ति, अप्रस्तुत विधान एवं अलंकार योजना आदि श्रेष्ठ बन पड़ा है।

---

७ कविवर पन्त और उनका काव्य

श्री सुमित्रानन्दन पंत आधुनिक काव्य-धारा के शीर्षस्थ कवि हैं। छायावाद से लेकर आधुनिकतम प्रयोगवाद तक की प्रत्येक काव्य-धारा को उन्होंने पुष्ट एवं समृद्ध किया है। यद्यपि श्री जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक-कवि माने जाते हैं, किन्तु अपनी छायावादी रचना शैली, सुकुमार अनुभूति एवं मनोरम कल्पना द्वारा छायावादी काव्य को समृद्ध कर उसे लोकप्रियता प्रदान करने वालों में पंतजी का स्थान सर्वोपरि है। वे छायावाद के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। पंत के कवि व्यक्तित्व का निर्माण प्रकृति-प्रेम, भारतीय दर्शन, वैदिक-चिन्तन तथा जीवन के गंभीर सत्यों के स्वस्थ्य मूल्यों से हुआ है। समय की धारा के साथ वे चले हैं और युग की मांग के अनुरूप अपने को ढालते रहे हैं।

पन्तजी कूर्मांचल के अल्मोड़ा प्रदेश की प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण भव्य भूमि में पैदा हुए। अतः वहाँ का अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य उनके अन्तर-मन पर शैशव काल से ही छाया रहा, जिसने उन्हें प्रकृति का सफल कवि बनाने में पर्याप्त योगदान दिया। वे कल्पना के सुकुमार कवि हैं। उन्होंने अपनी कोमल कल्पना एवं प्रकृति प्रेम द्वारा अपनी कविता को विकसित किया। प्रकृति की सुषमा, सरसता, मधुरता एवं कोमलता का उनके भावुक हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त पन्त मार्क्सवादी, गांधीवादी तथा अरविन्दवादी विचारधाराओं से भी प्रभावित हुए हैं।

पन्त के सम्पूर्ण काव्य का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि लगभग ५०-५५ वर्षों के दीर्घकाल तक उन्होंने प्रचुर मात्रा में साहित्य सृजन किया है। उनका कवि-व्यक्तित्व आधुनिक काल के पांच दशकों पर आच्छादित है जिसमें समयानुकूलता तथा नूतनता का भी उन्मेश हुआ है। पन्तजी ने अपने छात्र जीवन से ही कविता लिखना प्रारम्भ किया था। उनकी प्रथम कविता "तम्बाकू का धुआं" सन् १९१६ में लिखी गई थी और तभी से वे निरंतर लिख रहे हैं। पन्त की कृतियों

आधार पर उनके काव्य के क्रमिक विकास को निम्नलिखित तीन कालों में
ाजित किया जा सकता है—

(१) छायावादी-काल (प्राकृतिक सौंदर्यवादी युग) सन् १९१८ से १९३४
क।

(२) प्रगतिवादी-काल (यथार्थवादी युग) सन् १९३५ से १९४७ तक।

(३) आध्यात्मवादी-काल (अन्तश्चेतनावादी एवं नव मानवतावादी युग)
न् १९४८ से आज तक।

थम काल:—

पन्त का शैशव काल प्रकृति की गोद में व्यतीत हुआ और उनका लालन-
लन प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में हुआ। अतः वे बचपन से ही प्रकृति प्रेमी
वं अध्ययन शील रहे हैं। उन्होंने भारतीय दर्शन, उपनिषदों, बँगला एवं अंग्रेजी
ाहित्य का गहन अध्ययन किया था, जिसने उनके काव्य को एक ठोस भावभूमि
दान की है। उनके प्रथम काल की रचनाओं में 'वीणा' (१९१८-१९), 'ग्रन्थी'
१९२०), 'पल्लव' (१९१८-२५), 'गुञ्जन' (१९२६-३२) तथा 'ज्योत्सना'
गीतिनाट्य) (१९३३)।

पन्त की प्रारम्भिक कविताओं में प्रकृति का अनुपम सौंदर्य विविध रूपों में
चित्रित हुआ है। कवि की इन रचनाओं में प्रकृति के सभी रूपों का अत्यन्त सफलता
ूर्वक चित्रण हुआ है। प्रकृति चित्रण के लिये आधुनिक हिन्दी कवियों में वे अपना
विशिष्ठ स्थान रखते हैं। स्वयं कविवर पन्त के शब्दों में, " 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक
मेरी सभी रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य का प्रेम किसी न किसी रूप में वर्तमान है।'
पन्त ने अपनी प्रकृति सम्बन्धी अनुभूतियों को संवेदनशीलता एवं कल्पना की
सुकुमारता के साथ अभिव्यक्त किया है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रकृति का
प्रेम सर्वोपरि है। कवि प्रकृति को सचेतन एवं अनुपम सौंदर्य से युक्त पाकर तन्मय
हो जाता है। वह नित नूतन सौंदर्य से आवेष्ठित, चिर मोहना प्रकृति पर इतना
विमुग्ध हो जाता है कि बाला के मानवीय सौंदर्य में उसे कोई आकर्षण नहीं
प्रतीत होता:—

'छोड़ द्रुमों की मृदुछाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बालजाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन
भूल अभी से इस जग को।"

'मोह'

इस तरह रूपों में गुम्फित प्रकृति का सौंदर्य कवि को परम विभोर कर

देता है। इस काल की रचनाओं में कवि की स्वच्छंदतावादी, रोमानी प्रवृत्ति एवं छायावादी प्रवृत्ति पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हुई है। बंगला के श्रेष्ठ कवि रवीन्द्र, अंग्रेजी के कवि शैली, बायरन और कीट्स तथा हिन्दी के 'प्रसाद' आदि कवियों के काव्य का गहन अध्ययन करने के कारण कवि पन्त के काव्य में छायावादी तत्वों, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, मानवीकरण तथा उपचारवक्रता आदि का सुन्दर समावेश हुआ है। हिन्दी के छायावादी काव्य को समृद्धि प्रदान करने में कवि पन्त ने अपूर्व योग दिया है। छायावादी काव्य की समस्त विशेषताएँ पन्त के काव्य में प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। कुछ आलोचकों का कथन है कि पन्त का श्रेष्ठतम काव्य छायावाद काल में लिखा गया है। कवि प्रकृति के प्रति प्रेम, आनन्द उल्लास एवं मोह से युक्त हो प्रकृति में सजीवता की अनुभूति प्राप्त करता है। अज्ञात सत्ता के प्रति इसी जिज्ञासा को रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है।

प्रकृति कवि की सहचरी बन जाती है। प्रकृति की हरीतिमा उसे आकृष्ट करती है, कल्पना के नादान शिशु उसे हँसाते हैं और शत-शत भाव अधरों पर मुस्कान बनकर थिरकने लगते हैं। जल की लहरें मानो हाथ उठाकर उसे बुलाती हैं और ज्योत्स्ना, नक्षत्र तथा सुगंधित वायु कवि को मौन निमंत्रण देते से प्रतीत होते हैं :—

"न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमंत्रण देता मुझ को मौन।
न जाने सौरभ के मिस कौन,
सन्देशा मुझे भेजता मौन।"

'पल्लव'

कवि पन्त के काव्य में छायावादी एवं रहस्यवादी सभी तत्व-प्रकृति-प्रेम, स्वप्न लोक की सृष्टि, अज्ञात सत्ता के प्रति कौतूहल एवं जिज्ञासा, पलायन की प्रवृत्ति, नारी के प्रतिनूतन दृष्टिकोण, रोमांटिकता, प्रतीक विधान तथा लाक्षणिकता आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। नारी के प्रति कवि की प्रेम भावना एवं सहधर्मिनी का दृष्टिकोण निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :—

"तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणी
त्रिवेणी की लहरों का गान।"

'उच्छ्वास की बालिका'

प्रकृति में मानवीकरण का चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए :—

'मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार।''

'वीणा' पन्त की कविताओं का प्रथम संग्रह है, जिसमें प्रकृति एवं प्रेम सम्बन्धी कविताएँ संकलित हैं। प्रकृति सम्बन्धी इसी ओर की उनकी अन्य रचनाएँ हैं—'ग्रंथि', 'पल्लव' और 'गुञ्जन'। 'वीणा' की अपेक्षा पन्त उत्तरवर्ती कविताओं में प्रकृति चित्रण में अधिक मार्मिकता एवं सजीवता है, साथ ही हृदयोद्गार प्रकट करने में अनुभूति की तीव्रता तथा भाषा की सरसता अधिक प्रकट हुई है। प्रस्तुत संग्रहों की कविताओं में कल्पना की कोमलता, भावों की तीव्रता, चित्रोपमता तथा सौंदर्य, प्रेम और दर्शन का अपूर्व संगम हुआ है। रचना कौशल में कलात्मकता एवं भाषा में प्रौढ़ता के भी दर्शन होते हैं। पंत की प्रथम काल की प्रकृति सम्बन्धी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं—'पर्वत प्रदेश में पावस,' 'उच्छ्वास एवं आँसू की बालिका,' 'प्रथम रश्मि', 'एक तारा', 'अप्सरा' तथा 'नौका विहार' आदि।

द्वितीय काल:—

जब साहित्य में प्रगतिशीलता का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, युग की धारा के साथ कवि पन्त की विचार धारा ने भी एक नया मोड़ लिया। कल्पना के स्वप्निल लोक से कवि जीवन के ठोस धरातल पर उतर आया। कवि की यथार्थवादी विचारधारा नूतन विचारों से ओतप्रोत हो नये सौंदर्य बोध की ओर उन्मुख हुई। तत्कालीन प्रचलित मार्क्सवादी विचारधारा का कवि पंत पर भी प्रभाव पड़ा। कवि पन्त ने इस प्रभाव को स्वयं स्वीकारा है—' 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में मेरी क्रांति की भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नहीं होती, उसे आत्मसात करने का प्रयास भी करती है।''

कविवर पन्त की यथार्थवादी विचारधारा का आभास उनकी 'परिवर्तन' शीर्षक कविता मे कुछ कुछ होने लगा था। 'युगान्त' (१९३५–३६), 'युगवाणी' (१९३६–३८) तथा 'ग्राम्या' (१९३६–४०) - ये तीन संग्रह कवि पंत की यथार्थवादी काव्य कृतियाँ हैं। सन् १९४० मे कवि का एक अन्य काव्य-संग्रह 'पल्लविनी' प्रकाशित हुआ, जिसमे १९१८ से १९३६ तक की कुछ चुनी हुई रचनाएँ संकलित हैं। इसी प्रकार 'युग-पथ' में कवि की १९४८ तक की कतिपय रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने 'आधुनिक कवि' काव्य संग्रह प्रकाशित किया जिसमे १९४० तक की चुनी हुई रचनाएँ संकलित की गई है।

कवि पंत की यथार्थवादी (प्रगतिशील) कविताओं का प्रथम संग्रह 'युगान्त' है। प्रस्तुत संग्रह की प्रसिद्ध कविता 'द्रुतझरो' में कवि निष्प्राण प्राचीनता, निरर्थक रूढ़िवादिता एवं विगत-युग के प्रति अपना तीव्र आक्रोश एवं क्षोभ अभिव्यक्त करता है। कवि नूतन युग का आह्वान करता है। "गा कोकिल, बरसा पावस कण, नष्ट भ्रष्ट हों जीर्ण पुरातन" कह कर कवि पुरातन के विनाश एवं नूतन सृजन का सन्देश देता है। 'युगवाणी' मे कवि का आक्रोश भरा स्वर और भी प्रखर रूप ग्रहण कर लेता है। इस संकलन की कविताओं मे कवि मार्क्सवादी विचारधारा से पूर्णरूपेण प्रभावित है। मानव शोषण को तिरोहित कर कवि वर्गभेद को मिटाकर सभी मानवों के लिए जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र, मकान तथा उन्नति के समान अवसर सुलभ करना चाहता है। इस काल की अपनी अनेक कविताओं मे कवि शोषक वर्ग की भर्त्सना करता है तथा उनके विरुद्ध क्रान्ति का स्वर गुंजाता है। वह श्रमिकों एवं कृषकों के प्रति हार्दिक सम्वेदना भी अभिव्यक्त करता है:—

"कृषक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित,
सामूहिक कृषि कायाकल्प अन्यथा कृषक मृत।"

अपनी 'ताज' शीर्षक कविता में कवि अपनी अभूतपूर्व, नूतन एवं प्रगतिशील भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। छायावादी कल्पना लोक से उतर कर कवि सीधे साधे शब्दों में श्रमजीवियों का स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है:—

"ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रमजीवी धर डगमग पग
भारी है जीवन।
भारी है मग।"

कवि पंत के यथार्थवादी काल की तृतीय काव्य कृति है 'ग्राम्या', प्रस्तुत संग्रह मे ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित अनेक यथार्थ एवं सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं। इस संग्रह की कुछ प्रसिद्ध कविताएँ हैं— ग्राम-युवती', वह बुड्ढा', 'धोबियों का नृत्य', 'चमारों का नृत्य' तथा 'संध्या' के बाद आदि। इस काल मे कुछ समय तक कवि मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित रहा। यद्यपि बाह्यरूप से कवि ने मार्क्सवाद का पोषण किया है, किन्तु आन्तरिक रूप से वह गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित हो सत्य और अहिंसा के द्वारा ही जगत का हित करना चाहता है:—

"सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन।
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जावेगा जग-जीवन।।"

कवि पंत 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताओं में यथार्थवादी ठोस धरातल पर उतर कर सामाजिक क्रान्ति का आह्वान करता है। कवि पर गांधीवाद का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है साथ ही कवि पुरानी मान्यताओं को समाप्त कर, समाज में नई भावनाएँ फूंक कर नव क्रांति लाना चाहता है। जहाँ 'ग्राम्या' में ग्राम्य जीवन के अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं वहाँ ग्राम्य युवती के रोमान्स से परिपूर्ण कतिपय चित्र भी उसमें समाहित हैं। वह 'जन की लज्जा से वेष्ठित', स्नेह, शील और ममता की प्रतिमूर्ति भी है।

कवि पंत के मन मे जड़ एवं पुरातन संस्कृतियों के प्रति असंतोष का भाव परिव्याप्त है। वह मानव को रुढ़ियों एवं घिसी-पिटी मान्यताओं से मुक्ति दिलाना चाहता है। कवि समाज मे युगान्तरकारी परिवर्तन भी लाना चाहता है। पंत की इस काल की कविताओं ने प्रगतिवादी विचारधारा का पोषण कर उसे आगे बढ़ाने मे पर्याप्त योग दान दिया है। अतः उनकी ये यथार्थवादी रचनायें प्रगतिशील या प्रगतिवादी कविताएँ भी कहलाती हैं। यद्यपि कुछ आलोचक उनकी इन कविताओं को पूर्णतः प्रगतिवादी रचनाएँ नहीं मानते हैं, तथापि प्रगतिशील एवं नूतन क्रांति की भावनाएँ उनमें वर्तमान हैं। प्रथम-काल की रचनाओं मे कवि का प्रकृति के प्रति जितना प्रगाढ़ प्रेम एवं आकर्षण है, उतना मानव के प्रति प्रतीत नहीं होता, किन्तु द्वितीय काल की रचनाओं मे कवि का प्रेम एवं आकर्षण प्रकृति की अपेक्षा मानव के प्रति अधिक प्रतीत होता है। यदि प्रकृति का रूप सुन्दर है तो अब कवि को मानव 'सबसे सुन्दरतम' प्रतीत होने लगा है:-

"सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव! सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन, मृदु त्वचा, सौंदर्य प्ररोह अंग,
न्यौछावर जिन पर निखिल प्रकृति, छाया प्रकाश के रूप रंग।"

जहाँ 'ग्राम्या' में एक ओर ग्रामीणों के सामाजिक जीवन से सम्बद्ध ग्रामवधू, कहारों एवं धोबियों के नृत्य तथा वृद्ध की दयनीय दशा के अनेक चित्र भरे पड़े हैं, जो भारतीय जन जीवन और उनकी संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं तो दूसरी ओर राजनैतिक आन्दोलन सम्बन्धी 'चरखागीत', 'महात्माजी के प्रति' 'राष्ट्र गान' 'बापू' और 'अहिंसा' आदि के अनेक चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। प्रस्तुत संग्रह की रचनाएँ पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की श्रमिकों एवं ग्रामीणों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति अधिक है। कवि के अन्तरमन में नवीन विचारधाराओं (मार्क्सवादी तथा गांधीवादी) को लेकर संघर्ष उत्पन्न हुआ है। इस काल की अधिकांश कविताओं में बौद्धिकता अधिक है और कलात्मकता अपेक्षाकृत कम है।

तृतीय काल—

'स्वर्ण धूलि' (१९४६-४७) तथा 'स्वर्णकिरण' (१९४७-४८) की रचनाओं के साथ ही पंतजी के आध्यात्मिक काव्य अथवा अन्तश्चेतनावादी युग का सूत्रपात होता है। यद्यपि कवि कुछ काल तक गांधीवादी एवं मार्क्सवादी विचार धाराओं से प्रभावित रहा, किन्तु अरविन्द दर्शन का अध्ययन करने के पश्चात् उनकी विचार धारा ने एक नया मोड़ लिया। अरविन्द के सम्पर्क में आने के बाद कवि को दृढ़ विश्वास हो गया है कि विश्व कल्याण केवल मार्क्सवाद और गांधीवाद से नहीं, अपितु अरविन्द की विचारधारा के समन्वय द्वारा ही संभव है। कवि पंत ने स्वयं लिखा है-"'स्वर्ण-किरण' में मैंने अन्तर्जीवन, अन्तश्चेतना आदि को इतना अधिक महत्व इसलिए भी दिया है कि इस युग में भौतिक दर्शन के प्रभाव से हम उन्हें बिलकुल ही भूल गये हैं।" नि:संदेह पंतजी इस काल में अरविंद दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं और उनका यह प्रभाव 'स्वर्णधूलि' तथा अन्य अन्तरवर्ती कृतियों में भी लक्षित होता है। अरविन्द घोष के मतानुसार मानव जीवन में आध्यात्मवाद और भौतिकवाद दोनों का समन्वय अपेक्षित है। कवि पंत भी मानव के पूर्ण विकास के लिए दोनों को आवश्यक मानते हैं। कवि 'चेतना' को सर्वोपरि मानता है, क्योंकि अरविंद दर्शन में चेतना को सर्वव्यापक माना है:-

"यह मनश्चेतना ज्यों सक्रिय भू के चरणों पर बिखर बिखर,
शत स्नेहोच्छ्वसित तरंगों की बाहों में लेती भू को भर,
नभ से बन पवन, पवन से जल, लालायित यह चेतना अमर,
सोई धरती से लिपट, जगा दे उसे, युगों की जड़ता हर।"
'स्वर्ण किरण'

इस तृतीय काल में कवि गंभीर चिन्तन एवं दर्शन की ओर उन्मुख हुआ है। यह भी कहा जा सकता है कि कवि अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से अरविन्द-दर्शन की काव्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत कर रहा है। जीवन के मूल तत्वों का अन्वेषण कवि पंत अन्तर्मुखी होकर करते हैं। कवि मानव जीवन में भौतिक समृद्धि के साथ आध्यात्मिक (आत्मिक) विकास को भी महत्व देता है:-

"जन भू पर निर्मित करना नव जीवन वहिरतर संयं जित
मनुज धरा को छोड़ कहीं भी स्वग नहीं संभव यह निश्चित।"

'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' के पश्चात 'उत्तरा' में कवि पन्त नवीन सन्देश लेकर उपस्थित हुए-यह सन्देश नव मानवता का है। 'उत्तरा' का 'गीत-विहग' शीर्षक रचना में "मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता" कहकर कवि अपने आन्तरिक भावों को स्वर प्रदान करता है। कविवर पन्त सदा समय के साथ चले हैं। अतः

'उत्तरा' के पश्चात कवि का जो नूतन काव्य संग्रह 'कला और बूढ़ा चाँद' प्रकाशित हुआ, उसमें नव प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत संग्रह में कवि की सन् १९५९ तक की रचनाएँ संकलित हैं, जिनमें बौद्धिकता का प्राधान्य है। इसी बीच कवि का 'अतिमा' (१९५५) काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुआ। सन् १९६१ में कवि पंत का ६८० पृष्ठों का वृहद् काव्य ग्रन्थ 'लोकायतन' प्रकाशित हुआ। 'लोकायतन' एक महाकाव्य है, जिसमें गांधी जीवन-दर्शन में कवि की भारतीय चिन्तनधारा का समन्वय हुआ है। प्रस्तुत महाकाव्य में आगामी मानव की (भावी) संस्कृति की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है। यह ग्रन्थ लोक जीवन पर आधारित है, जिसमें लोक चेतना का स्वर प्रधान है। भारतीय भावभूमि पर आधारित विश्व मानव की अनेक परिकल्पनायें इस ग्रन्थ में की गई हैं। उदाहरणार्थ कवि की एक परिकल्पना देखिए:–

"मनुज एकता ही नवयुग आत्मा
महत धरा जीवन में हो स्थापित
जाति धर्म वर्गों से कढ़ भू मन
लांघ राष्ट्रसीमा, हो दिग् विस्तृत।"

कविवर पंत के कुछ अन्य संकलन भी प्रकाशित हुए हैं–'वाणी' (१९५७) और 'रश्मिबन्ध' जिसमे 'वीणा' तक की चुनी हुई कविताएँ संग्रहीत हैं। सन् १९६२ मे 'वाणी' का द्वितीय संकलन और प्रकाशित हुआ, जिसमें कवि की १९६२ तक की रचनाएँ संकलित हैं। इस काल की रचनाओं मे कवि मानव को समुन्नत बनाने की भावनाएँ निरंतर अभिव्यक्त करता है। वास्तव में 'उत्तरा' के बाद की कृतियों में नव-मानव संस्कृति के सृजन की कवि ने तीव्र इच्छा अभिव्यक्त की है और इन रचनाओं में नव मानवतावादी स्वर सर्वोपरि है। कवि चाहता है कि मानव समाज जाति-पाँति एवं वर्गों मे विभाजित न हो। आज का मानव नव चेतना से अनुप्राणित हो तथा नये उन्नत समाज का निर्माण करे। कवि मानव-मानव के बीच की खाई को पाट कर विश्व के मानवों को समान धरातल पर लाकर विश्व बन्धुत्व की भावना से परिपूर्ण कर देना चाहता है। कवि का विश्वास है कि आज की वैज्ञानिक प्रगति देश और जाति मे मोह की भित्तियाँ खड़ी कर मानव की प्रगति में बाधा उपस्थित कर रही है और अणुबम का यम उसके सिर पर सदैव सवार रहता है:–

"देश जाति की मोह भित्तियाँ रोके भू मानव विकास क्रम,
मुक्त नहीं चेतना, त्रस्त मन, मडराता सिर पर यम अणुबम।"
'रश्मि बंध'

कवि यह भी अनुभव करता है कि विज्ञान की इस होड़ ने मानव को आत्महीन बनाकर दानवता का शिकार बना दिया है:–

"इन्द्रियाँ विमुख मनुज आत्मा ज्यों द्वार रहित मृतगृह तम-सावृत,
आत्महीन मानवता त्यों ही दानवता की प्रतिभा कुत्सित।"

तृतीय काल की आध्यात्मिक एवं नव मानवतावादी रचनाओं में कवि का व्यक्तित्व दो रूपों में प्रकट हुआ है– एक विचारक के रूप में तथा दूसरा कवि के रूप में। वह विचारक के रूप में अपने विचारों को प्रकट करता है तथा कवि के रूप में निजी भावों को अभिव्यक्त करता है। कवि ने अपनी आध्यात्मिक रचनाओं में (विशेष रूप से 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण' में) विचारों एवं भावों में सामञ्जस्य उपस्थित करने का पूर्ण प्रयत्न किया है, किन्तु विचार तत्व की इसमें प्रधानता है। इस काल की उत्तरवर्ती रचनाओं में कवि अरविन्दवाद से प्रभावित हो कभी नव चेतना के गीत गाता है, तो कभी नव मानवतावाद के। इन रचनाओं में कवि का निजी चिंतन प्रमुखता लिए हुए है, अतः कलापक्ष पर कवि का ध्यान कम है। अपनी अन्तिम नूतन कृतियों में कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सीधी–साधी भाषा को ग्रहण करता है। कम से कम शब्दों में, यहां तक कि संकेतों के सहारे तथा प्रतीकों के माध्यम से अपने भाव को अभिव्यक्त करता है:—

"मैं शब्दों की
इकाइयों को रौंदकर
संकेतों में
प्रतीकों में बोलूंगा
उनके परों को
असीम के पार
फैलाऊंगा।"

'कला और बूढ़ा चांद'

कविवर पंत मूलतः सुकुमार कल्पना के मधुर गायक हैं। पंत के सम्बन्ध में डा० बच्चन ने भी लिखा है—"पंतजी कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं, इच्छा के गायक हैं, वासना, तीव्रतम इच्छा के नहीं।" पंत की प्रारंभिक काल की रचनाओं में कल्पना की प्रचुरता है। कल्पना का अतिरेक उनकी कविता को गति और तीव्रता प्रदान करता है। कवि की प्रथम कृति 'वीणा' से लेकर 'लोकायतन' तक की रचनाओं में अनुभूति की प्रधानता न होते हुए कल्पना की ही प्रधानता है। वास्तव में पंत की रचनाएँ पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धिकता का उनमें अधिकार है तथा उसका परिचालन करने वाली कल्पना ही है।

पंत ने सर्वप्रथम अपनी सुकुमार कल्पना से प्रकृति के अनेक मनोरम एवं

लिए भी प्रख्यात हैं। एक वाक्य में हम कह सकते हैं कि पंत की भाषा कोमल कांत पदावली से युक्त है। उन्होंने अपनी कविताओं में चुन चुन कर कोमल शब्दों का प्रयोग किया है। इसीलिये अनेक स्थानों पर उन्होंने पुलिंग शब्दों को स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त किया है। उनकी भाषा में लयात्मकता एवं संगीतात्मकता भी पाई जाती है। उन्होंने नवीन नवीन शैलियों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक किया है। यद्यपि प्रारम्भ में वे अंग्रेजी एवं बंगला भाषा के कवियों से पर्याप्त प्रभावित हुए, किन्तु उनकी शैली स्वच्छंदता एवं मौलिकता से परिपूर्ण है।

कवि पंत आधुनिक हिन्दी के विशिष्ट कवि हैं, जिन्होंने अपने युग से कभी मुँह नहीं मोड़ा। अपने समय के सभी साहित्यिक आन्दोलनों को उन्होंने पुष्ट एवं सबल बनाया है। अपने काव्य-रचना के प्रथम चरण में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता एवं पौराणिकता के विरुद्ध उन्होंने काव्य लिखा एवं छायावादी काव्य को आगे बढ़ाने में पर्याप्त योगदान दिया तथा साहित्य जगत में उसे प्रतिष्ठापित किया। जब प्रगतिशीलता का दौर आया, तब उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा प्रगतिवादी आन्दोलन को शक्ति प्रदान की एवं प्रगतिवादी (यथार्थवादी) कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की। तत्पश्चात् हिन्दी काव्य को आध्यात्मवादी, अन्तश्चेतनावादी तथा नव मानवतावादी श्रेष्ठ कविताओं से सम्पन्न बनाया। उन्होंने अपने नूतन काव्य द्वारा नवीन प्रयोगवादी हिन्दी कविता को भी प्रेरणा प्रदान की। निःसन्देह आधुनिक हिन्दी काव्य में कविवर पंत का योगदान अक्षुण्ण है।

---

८ रवीन्द्र का आधुनिक हिन्दी कवियों पर प्रभाव

रवीन्द्रनाथ ठाकुर आधुनिक युग के एक ऐसे मेधावी, बहुमुखी, प्रतिभावान् कलाकार हैं जिन्होंने भारतीय वाङ्मय को अपनी वाणी एवं विचारधारा से पुष्ट एवं प्रभावित किया है। भारत की लगभग सभी भाषाओं हिन्दी, मराठी, गुजराती, मलयालम तथा तामिल आदि पर कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तुतः भारतीय साहित्य रवीन्द्रनाथ का ऋणी है। निःसंदेह रवीन्द्र का काव्य महान् है, क्योंकि उसमें भारतीय जीवन की प्राचीन तथा अर्वाचीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का जीवन्त चित्र है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से विश्व की मानवता को आध्यात्मिकता का संदेश सुनाया तथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पाश्चात्य देशों में प्रचार एवं प्रसार किया। वे कवि, चित्रकार, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, राजनैतिक नेता, सांस्कृतिक गुरु ही नहीं, अपितु युगावतार थे। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि वे व्यक्ति नहीं, अपितु एक विभूति एवं संस्था थे।

अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सन् १८०० ई० में बंगाल के प्रसिद्ध नगर कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की थी। अतः पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता एवं शिक्षा का प्रारम्भ बंगाल में सर्वप्रथम हुआ। भारतीय भाषाओं में बंगला ही एक ऐसी भाषा है जिसमें नवयुग की विचारधाराओं का उन्मेष अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा पहले हुआ। इधर भारतीय समाज एवं साहित्य में क्रान्तिनाद करने वाले तथा नवीन प्राण फूंकने वाले राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा महर्षि देवेन्द्रनाथ का उदय हुआ। पश्चिमी सभ्यता एवं शिक्षा के प्रसार एवं सम्मिलन से इन स्वतन्त्र चिंतकों के क्रान्तिवाद में तीव्रता आई। इन्हीं भारतीय क्रान्तिकारी चिंतकों की परंपरा में रवीन्द्रनाथ अग्रगण्य हैं। रविबाबू ने भारतीय उपनिषदों एवं अन्य दर्शनशास्त्रों का गहन अध्ययन एवं चिंतन कर एक नवीन जीवन दर्शन का प्रणयन किया। उपनिषदों की पृष्ठभूमि होने के कारण ही

रवीन्द्र की चिन्तनधारा पूर्णरूपेण भारतीय है जिसमें मानव जीवन के सम्पूर्ण व्यापारों की सौंदर्यमयी सहानुभूति है जो कि आध्यात्मिक रहस्यवाद को लेकर चली है। रवीन्द्र बाबू के इसी विशिष्ट दृष्टिकोण पर सन् १९१३ ई० में उनकी अमरकृति 'गीतांजलि' पर विश्व का सर्वश्रेष्ठ नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। रवीन्द्र की काव्य प्रतिभा की सार्वभौम स्वीकृति भारतीय साहित्य के इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है, जिसने भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं के साहित्य पर प्रचुरमात्रा में प्रभाव डाला।

बंगला भाषा से हिन्दी भाषा का सम्पर्क भारतेन्दु काल में ही स्थापित हो गया था। भारतेन्दु युग में बंगला के प्रतिष्ठित लेखकों के उपन्यासों, नाटकों एवं कहानियों के कितने ही अनुवाद हिन्दी भाषा में हुए थे। किन्तु जब आधुनिक युग के द्वितीय चरण में रविबाबू की 'गीताञ्जलि' का विश्वव्यापी प्रभाव हुआ तब हिन्दी साहित्य भी रविन्द्र के प्रभाव से वंचित न रहा। विशेष रूप से आधुनिक हिन्दी कविता के रचना विधान में एक युगान्तर उपस्थित हो गया। 'गीताञ्जलि' की प्रसिद्धि के साथ ही हिन्दी के तत्कालीन कवियों का ध्यान रवीन्द्र की काव्य रचना शैली और उसके स्वरूप विधान की ओर आकृष्ट हुआ। हिन्दी साहित्य में इस समय जागरण और सुधार के नैतिक आदर्शों से युक्त, बहिर्मुखी अभिव्यक्ति से पूर्ण इतिवृत्तात्मक द्विवेदी-युग चल रहा था। अनेक कवियों की अन्तर्मुखी काव्य चेतना द्विवेदी काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया करने के हेतु छटपटा रही थी। श्री जयशंकर प्रसाद की प्रारम्भिक रचनाओं में सामयिक काव्यादर्शों से कुण्ठित कवि चेतना की यह व्यग्रता स्पष्ट रूप से प्रकट हो रही थी। स्थूल के प्रति सूक्ष्म तथा बहिरंग के प्रत अंतरंग की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दी साहित्य में छायावाद का जन्म होना अवश्यम्भावी था। इधर प्रतिक्रिया की भूमि तैयार थी, उधर रवीन्द्र भी इस क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित कर चुके थे। अतः हिन्दी के तत्कालीन कवियों ने रवीन्द्र से प्रेरणा ग्रहण की तथा रवीन्द्र काव्य का अध्ययन किया। पं० गिरधर शर्मा 'नवरत्न' ने 'गीतांजलि' का सर्व प्रथम पद्यानुवाद हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया।

जहां एक ओर 'छायावाद' का जन्म आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शुष्क, नीतिप्रधान, इतिवृत्तात्मक काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ, वहां दूसरी ओर अंग्रेजी और बंगला काव्य का प्रभूत मात्रा में उस पर प्रभाव पड़ा। द्विवेदी काल के हिन्दी काव्य में स्वच्छन्द नूतन धारा का श्रीगणेश रवीन्द्र काव्य शैली के आधार पर हुआ। विशेष रूप से छायावाद की रोमानी प्रवृत्तियों तथा रहस्यवादी पहलू पर रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव पड़ा है। द्विवेदीजी के सम्पादन काल में 'सरस्वती' में श्री मुकुटधर पाण्डेय की छायावादी कविताओं के अतिरिक्त सुमित्रानंदन 'पंत' की

'स्वप्न' शीर्षक कविता तथा 'निराला' की 'जुही की कली' शीर्षक मुक्तछंद की कविता प्रकाशित हुई थी। द्विवेदी काल के अंतिम चरण में रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा का हिन्दी काव्य पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। 'प्रसाद' और 'पंत' की रचनाओं में नई शैली लाक्षणिक संकेतों को लेकर प्रमुख रूप से सामने आई और इसे छायावाद की संज्ञा प्रदान की गई।

आधुनिक हिन्दी काव्य में स्वच्छंद नवीन धारा के कवियों की मुक्तक की रचनाएँ बंगला साहित्य के अनुकरण पर 'छायावादी' कविता कही जाने लगी थीं। चिंतन और शिल्प दोनों पर रवीन्द्र काव्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'गीतांजलि' की अनेक रहस्यवादी (Mystic) कविताओं की छाया हिन्दी के अनेक रहस्यवादी छायावादी कवियों ने ग्रहण की है। पाश्चात्य रहस्यवाद (Mysticism) तथा कबीर एवं जायसी की रहस्यवादी भावना हिन्दी के आधुनिक गीतकारों ने रवीन्द्र के काव्य (गीतों) द्वारा ग्रहण की है। हिन्दी के छायावादी कवियों में 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' तथा श्रीमती महादेवी वर्मा का प्रमुख एवं विशिष्ट स्थान है। इन चारों छायावादी एवं रहस्यवादी कवियों ने आधुनिक हिन्दी कविता को प्रौढ़ता एवं प्राञ्जलता के चरम शिखर पर पहुँचाया है। इन चारों की प्रारंभिक रचनाओं पर रवीन्द्र का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा है।

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद अग्रगण्य हैं। रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव 'प्रसादजी' की रचनाओं पर सन् १९१३ ई० के लगभग पड़ने लगा था, ऐसा तत्कालीन कविताओं को देखने पर प्रतीत होता है। यद्यपि सन् १९१३ ई० से पूर्व की प्रसादजी' की कविताएँ प्रेम तथा प्रकृति के प्रति कवि का नवीन दृष्टिकोण प्रदर्शित करती हैं किन्तु आध्यात्म का उनमें अभाव है। सन् १९१३ ई० में प्रसादजी ने 'नमस्कार' शीर्षक की जो दो रचनायें प्रकाशित की थी उन पर 'गीतांजलि' की अन्तिम कविता का प्रभाव जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त 'कानन कुसुम' तथा 'झरना' की अनेक कविताओं पर 'गीतांजलि' का प्रभाव लक्षित होता है। यद्यपि प्रसादजी ने इन कविताओं में आध्यात्मिक भाव ग्रहण किये हैं, किन्तु उन पर अपने चिंतन की छाप लगादी है। प्रसादजी की प्रेरणा का मूल स्रोत भारतीय संस्कृति ही रही है। अपने युग के रोमानी वातावरण से कवि प्रसाद ने प्रेरणा अवश्य ली है, किन्तु उनकी काव्य चेतना रवीन्द्र की भाँति समन्वयवादी होते हुए भी अधिक भारतीय है। उनके भारतीय जीवन दर्शन की चरम परिणति 'कामायनी' में उपलब्ध होती है।

आधुनिक, हिन्दी कवियों में कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का प्रमुख

स्थान है। वे छायावादी कवियों में सबसे अधिक क्रांतिकारी कवि हैं। 'प्रसाद' की भांति दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता इनके काव्य की दो प्रमुख विशेषतायें हैं। भाषा और छन्द की दृष्टि से निराला को युगान्तरकारी कवि माना जाता है। बंगला भाषा-भाषी होने के कारण निराला का रवीन्द्र-साहित्य से घनिष्ट एवं प्रत्यक्ष परिचय था। अतः उनकी कवि चेतना का प्रारम्भिक विकास जिस साहित्यिक वातावरण में हुआ उस पर रवीन्द्रनाथ का पर्याप्त प्रभाव था। 'निरालाजी' की प्रारम्भिक रचनाएं 'पंचवटी प्रसंग', 'जुही की कली' तथा 'तुम और मैं' जो कि 'अनामिका' (सन् १९२० ई०) में संग्रहीत हैं रवीन्द्र, विवेकानन्द तथा परमहंस से पर्याप्त प्रभावित हैं। निराला का 'परिमल' विषयों की विविधता तथा शैलियों की अनेक रूपता की दृष्टि से अभूतपूर्व है। इस संग्रह की प्रार्थनात्मक कवितायें जिनमे रहस्यानुभूति अत्यन्त सरस एवं मोहक बन पड़ी हैं रवीन्द्र की 'गीतांजलि' से प्रभावित जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ निराला की निम्न पंक्तियां—

"प्रतिपल तुम ढाल रहे ज्योति सुधा मधुर धार
मेरे जीवन पर प्रिय यौवन बन के बहार।"

रवि बाबू की गीतांजलि' के प्रथम गीत के भावों से काफी मेल खाती हैं जिसमें कवि कहता है—'हे अनन्त, हे महान, हे प्रिय! तुम मेरे जीवन पर प्रतिपल प्रेम की अविरल वर्षा कर रहे हो, वह इतनी मधुर है, इतनी प्रकाशवान है कि हृदय को विह्वल कर देती है। तुम्हीं तो मेरे यौवन की सर्वोत्तम स्थिति हो, यौवन बन की बहार हो......................।' इसके अतिरिक्त निराला के अनेक छोटे छोटे गीतों पर प्रतीक एवं ध्वनि के नवीन प्रयोगों पर तथा दार्शनिक चिन्तन पर रवीन्द्र का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

आधुनिक छायावादी कवियों में श्री सुमित्रानन्दन पंत सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। 'पंत' की प्रारम्भिक रचनाओं में 'पल्लव' तथा 'वीणा' संग्रहों की अनेक कवितायें रवीन्द्र की 'गीतांजलि' से प्रभावित होने के कारण प्रार्थनात्मक हैं। भाव तथा भाषा शैली दोनों ही दृष्टियों से रवीन्द्र के बंगला गीतों की उन पर स्पष्ट छाप है। कविवर 'पंत' ने स्वयं हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'आधुनिक कवि' की भूमिका के रूप में 'पर्यालोचन' में अंग्रेजी कवियों—शैली, वर्डसवर्थ, कीट्स और टेनीसन के अतिरिक्त रवीन्द्र की काव्य प्रतिभा के प्रभाव को विशेष रूप से कृतज्ञतापूर्वक स्वीकारा है। पंत के काव्य में रवीन्द्र का प्रभाव एक दूसरे रूप में भी लक्षित होता है—बंगला शब्दों के अनेक हिन्दी अनुवाद उनके गीतों में समान अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। (भयकर 'सौन्दर्य तथा पवन के सन्देश आदि शब्दों के प्रयोग

बंगला शब्दों के अनुवाद हैं।) पंत की 'कोमल कान्त पदावली' एवं 'मौन निमं
आदि पर रवीन्द्र की छाया स्पष्ट लक्षित होती है।

आधुनिक हिन्दी गीतकारों में श्रीमती महादेवी वर्मा का विशिष्ट स्थान
श्रीमती वर्मा के रहस्यवादी गीतों की तीव्र वेदना, प्रणयानुभूति तथा अज्ञात प्र
असीम सत्ता के प्रति जो अलौकिक पीड़ा का सौरभ है, उस पर रवि बाबू के गीतों
अनुगुंज है। यद्यपि महादेवी ने रवीन्द्र काव्य से प्रेरक प्रभाव ग्रहण किया है, कि
उनके गीतों का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। रवीन्द्र एवं महादेवी के कुछ ग
में असीम से मिलने के समान तड़प है, तो कहीं उस असीम से मिलने की काल्पनि
सुख की अनुभूति है। कहीं दोनों में व्यक्तिगत अनुभूति एवं संस्कारों के अनु
अनेक रूपता भी दीख पड़ती है:—

'असीम से चाहे सीमार निविड़ संग
सीमा चाय होते असीमेर माझे हार।'

(अर्थ:—असीम की अभिलाषा सीमा के आलिंगन की है और सीमा असी
में मग्न हो जाना चाहती है)

—रवीन्

'जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल
देखो तो तुम देव अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।'

—महादेवी

महादेवी के गीतों में कहीं-कहीं रवीन्द्र के गीतों जैसे सम्बोधन भी पा
जाते हैं। रवीन्द्र ने मरण को 'प्रियदूत' कहकर सम्बोधित किया है, तो महादेवी
'प्राणों के अन्तिम पाहुना' कहकर उसे सम्बोधित किया है। निम्नलिखित उदाहरण
रवीन्द्र के भावों का हिन्दी कवियों पर प्रभाव लक्षित करता है:—

'कौन कुसुमेर आशे, कौन फुल बासे
सुनील आकाशे मन धाय।'

(अर्थ:—किस पुष्प की अभिलाषा में और किसके सौरभ से सुनील आकाश
में कौन मन को दौड़ाता है)

—रवीन्द्र

'सजनि कौन तम में परिचित सा,
सुधि सा छाया सा आता।'

—महादेवी

'न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमंत्रण देता मुझको मौन !'

'बाहें अगणित बही जा रही हृदय खोलकर
किसके आलिंगन का यह है साज ?'

—निराला

रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक आलोचनात्मक निबन्धों की पुस्तक 'प्राचीन साहित्य' काव्य में उपेक्षिताओं का उल्लेख करते हुए अत्यन्त मार्मिक आलोचना प्रस्तुत की सका हिन्दी काव्य के निर्माण पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। रवीन्द्र की इस समा-चना ने हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया। ष्ट्रीय कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने अपने महाकाव्य 'साकेत' में उर्मिला को नायिका रूप में चित्रित कर उर्मिला के चरित्र को विशेष रूप से चमकाया है। गुप्तजी के पर' पर भी कवीन्द्र की रचना शैली का प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त गुप्तजी 'झकार' की अनेक कविताएं रवीन्द्र काव्य से प्रभावित जान पड़ती हैं।

छायावाद के उत्तरवर्ती कवियों में डा॰ रामकुमार वर्मा, जानकीवल्लभ श्री, बच्चन, सुमित्राकुमारी सिन्हा, नरेन्द्र शर्मा, अचल, नीरज आदि पर भी न्द्र काव्य का थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा है। राष्ट्रीय एवं सार्वभौम मानव सौंदर्य चेतना रवि बाबू के काव्य में प्रच्छन्न रूप से उभरी है। इसके अतिरिक्त रवीन्द्र य में मानवतावादी स्वर सर्वोपरि हैं। मानवीय करुणा, सहानुभूति एवं उन्मुक्त ा से रवीन्द्र साहित्य आप्लावित है। रवीन्द्र के इस मानवतावादी स्वर की थोड़ी झंकार हिन्दी के आधुनिक कवियों में प्रतिध्वनित हुई है। जिस प्रकार छाया- । एवं रहस्यवादी कवियों ने रवीन्द्र काव्य से प्रेरणा ली, उसी प्रकार राष्ट्रीय ना का चित्रण करने वाले कविगण सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी (हिमकिरीटिनी), नलाल द्विवेदी (पूजा गीत), दिनकर (रसवंती), नवीन (पराजय के गीत) की कविताएं रवीन्द्र की राष्ट्रीय भावनाओं से स्पर्शित हैं।

जैसा कि मैंने पूर्व निवेदन किया है कि भारतीय भाषाओं में बंगला भाषा ही प्रथम अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के सम्पर्क में आई थी। रवीन्द्र ने पाश्चात्य तिक परम्पराओं को सादर ग्रहण कर आत्मसात किया। इसी कारण रवीन्द्र में पाश्चात्य एवं पौर्वात्य भावों, विचारधाराओं एवं शैलियों का विनियोग य दीख पड़ता है। काव्य शिल्प में प्रतीकों का प्रयोग, मूर्त में अमूर्त और मे मूर्त की योजना, ध्वन्यार्थ व्यंजना (Onomatopoeia), अलंकारों में

९ महाकवि 'निराला' की काव्य साधना

स्वर्गीय सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक युग के उन साहित्यकारों में से न्होंने हिन्दी साहित्य के गौरव को बढ़ाया है। छायावादी काल के चार प्रमुख में—'प्रसाद', पंत, 'निराला' तथा महादेवी वर्मा में 'निराला' का स्वर अपनी ता एवं ओजस्विता के कारण सबसे भिन्न और विशिष्ट है। नाम के अनुरूप ही का व्यक्तित्व भी निराला था—गठीला, कसरती, विशाल शरीर, उन्नत ललाट, *दियों की सी दार्शनिक जिज्ञासा से युक्त भावभीने बड़े बड़े नेत्र, देखने में* दपि कठोर, किन्तु वास्तव में कुसुमादपि कोमल, निस्पृह उनका व्यक्तित्व निराला विपत्तियों में हिमालय से दृढ़ एवं आस्थावान, मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण, के प्रति उदासीन तथा दूसरों के लिए सदैव चिंतित, सामाजिक मानव जीवन ी की रक्षा हेतु वे सदैव प्रयत्नशील रहे। वे केवल महाकवि ही नहीं थे, अपितु महा व भी थे। यदि आधुनिक काल में महाप्राण निराला का जन्म न हुआ होता, तो वत: आज हमारा काव्य इतना महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट न होता।

महाकवि 'निराला' का जन्म सन् १८९६ में बंगाल के मेदनीपुर के अन्तर्गत ुधादल में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वहीं हुई थी। वे संस्कृत और ला के अच्छे ज्ञाता थे। कविता के प्रति अनुराग जागृत होने पर अपनी प्रारम्भिक वताएँ बंगला में ही लिखीं। हिन्दी के प्रति आपका अनुराग बाद में हुआ और दी में जो लिखना प्रारम्भ किया तो हिन्दी के ही होकर रह गये। आपने भारतीय न का गहन अध्ययन किया था। आपके दार्शनिक विचारों पर श्रीरामकृष्ण परम तथा स्वामी विवेकानन्दजी का बहुत प्रभाव पड़ा है। भारतीय अद्वैतवाद एवं न्त के आप पोषक हैं। अतः आपकी कुछ कविताओं में रहस्यवादी भावनाएँ भी ती हैं। दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता निराला जी के काव्य की दो प्रमुख षताएँ हैं।

जीवन संघर्षों में पलकर उनका व्यक्तित्व सुदृढ़ एवं महान बना। भौतिक-

आवश्यकताओं के प्रति वे सदैव उदासीन रहे, किन्तु दूसरों के प्रति वे सदैव संवेदनशील एवं उदार रहे। उनकी उदारता के अनेक मार्मिक संस्मरण हैं। प्रयाग के कितने ही निर्धन, छात्र, मजदूर, तांगेवाले तथा भिखारी आदि समय-समय पर उनकी गाढ़ी कमाई एवं सृजन का बहुमूल्य पारिश्रमिक सहायता के रूप में पाते रहते थे। यद्यपि सम्मान पाने की लालसा उनमें नहीं थी, किन्तु तनिक भी असम्मान उन्हें सहन नहीं था। उनमें स्वाभिमान का भाव सदैव बना रहा। छायावाद के निर्माता होते हुए भी उनकी पैनी दृष्टि सामान्य, यथार्थ जन जीवन की ओर उन्मुख हुई और सहसा उनके कण्ठ से यह वाणी फूट पड़ी थी :—

(क) "वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।"

(ख) "वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।"

आधुनिक हिन्दी साहित्य में यदि 'प्रसादजी' ने छायावादी काव्य का सूत्रपात कर नूतन स्वच्छंदतावादी काव्य का प्रवर्तन किया, तो 'निरालाजी' ने छद और भाषा के क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित किया। उन्होंने कविता के लिये छंदों के बन्धन को स्वीकार नहीं किया और एक नया छद प्रचलित किया जिसे मुक्त छद की संज्ञा दी गई। आरम्भ में मुक्त छंद की कटु आलोचना की गई किन्तु बाद में इसे मान्यता प्राप्त हुई। उत्तरवर्ती कवियों ने इसी मुक्त छद में अपनी रचनाएँ लिखीं, प्रयोगवाद और नयी कविता ने मुक्त छद को ही स्वीकारा है।

प्रारम्भिक रचनाएँ—

'अनामिका' (प्रथम) काव्य संग्रह सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश कविताएँ 'मतवाला', 'नारायण' तथा 'समन्वय' में प्रकाशित हो चुकी थीं। हिन्दी काव्य में प्रस्तुत संकलन की कविताओं द्वारा परिवर्तन का आभास मिलता है। यद्यपि 'अनामिका' की अनेक कविताएँ रवीन्द्र एवं विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित हैं, किन्तु मौलिकता के प्रति कवि का पूर्ण आग्रह है। इस संग्रह की दो रचनाएँ 'जुही की कली तथा 'तुम और मैं' उच्च कोटि की रचनाएँ हैं, जो कि कवि के द्वितीय काव्य-संकलन 'परिमल' में भी संगृहीत हैं। इस संकलन की एक और कविता अत्यन्त श्रेष्ठ रचना है –'पंचवटी प्रसग', जिसमें कवि ने बड़े शक्तिशाली ढंग से मुक्त छद का लयात्मक प्रयोग किया है। कवि की रहस्यवादी प्रसिद्ध रचना 'तुम और मैं' में जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति जितने सुन्दर रूप में हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। विषय भाव और कला की दृष्टि से भी यह कविता

निरालाजी की श्रेष्ठतम कविताओं में से एक है। कविता का प्रारम्भ बड़ी विषद् भूमिका से हुआ है: —

"तुम तुंग हिमालय-शृंग
और मैं चंचल गति सुर-सरिता,
तुम विमल हृदय उच्छवास
और मैं कान्त कामिनी-कविता।
× × ×
तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजनी भाषा।
तुम प्राण और मैं काया,
तुम सच्चिदानंद ब्रह्म
और मैं मन मोहिनी माया।"

'परिमल'—सन् १९३० में निराला का द्वितीय [illegible]
वास्तव में निराला को हिन्दी के कवियों में प्रतिष्ठित करने वाला यही काव्य ग्रंथ है। 'प्रसाद' का 'आंसू', पंत का 'पल्लव' और 'निराला' का 'परिमल' छायावादी काव्य की तीन महत्वपूर्ण कृतियां हैं। नि:संदेह 'अनामिका' (प्रथम) की रचनाओं पर बंगला का प्रभाव था। अतः 'परिमल' की भूमिका में ही कवि ने ६५ प्रतिशत मौलिकता का दावा किया है। वास्तव में उस समय हिन्दी के बड़े बड़े साहित्यकार बंगला एवं अंग्रेजी कवियों से प्रभावित हो रहे थे। यद्यपि 'प्रसाद' और पंत आदि हिन्दी के कवियों का पर्याप्त नूतन काव्य सामने आ चुका था, किन्तु पुरोगामी इन कवियों के काव्य को अधिक महत्व न देते हुए नजर अंदाज कर रहे थे। निराला ने तत्कालीन परिस्थितियों में मौलिकता का दावा कर बड़े साहस का परिचय दिया और अपनी इस मौलिकता को अन्त तक अक्षुण्ण बनाये रखा। निराला द्वारा रचित 'परिमल' की कविताओं की प्रसाद गुण से परिपूर्ण, साधारण बोलचाल की भाषा ने लोगों को आकर्षित किया। साथ ही भावों की अभिव्यंजना के नूतन ढंग से लोग प्रभावित हुए। जहाँ एक ओर प्रस्तुत संकलन में प्रेम और सौंदर्य से परिपूर्ण 'जुही की कली' जैसी श्रेष्ठ रचना है तो वहाँ दूसरी ओर कवि दलित, पीड़ित मानवों के प्रति करुणा की अजस्र धारा प्रवाहित कर, 'भिक्षुक' और 'विधवा' के प्रति हार्दिक संवेदना अभिव्यक्त करता है।

'परिमल' की कुछ कविताओं में कवि का विद्रोही स्वर संगीत और भावों के साथ एकाकार होकर प्रस्फुटित हुआ है। 'निराला' का कवि व्यक्तित्व राष्ट्रीय चेतना

से अनुप्राणित हो कतिपय रचनाओं में उभर कर आया है, जहाँ कवि भारत के जीवन का आह्वान करता है :—

> "जागो फिर एक बार।
> सत थी अकाल भाल अनल धक धक कर जला।
> भस्म हो गया था काल, तीनों गुण ताप त्रय।
> अभय हो गये थे तुम, मृत्युंजय व्योम केश के समान।
> अमृत संतान! तीव्र भेद कर सप्तावरण मरण लोक।
> शोकाहारी पहुँचे थे वहाँ, जहाँ आसन है सहस्त्रार।
> जागो फिर एक बार।"

'परिमल' की कविताओं के विषय विविध हैं, अभिव्यंजना के प्रकार भी अ हैं। प्रस्तुत सकलन में निराला का काव्य अत्यन्त विस्तृत धरातल पर खड़ा अतएव आलोचकों ने 'निराला' को 'रहस्यवादी-कवि' तथा 'कठिन-कवि' अ कहकर पुकारा है। कवि ने प्रकृति में आत्मा और परमात्मा का अद्वैतवादी भ दर्शाया है—'जुही की कली' असीम का प्रतीक है और आत्मा का रूपक मोह का है। 'परिमल' की कुछ कवितायें निराला के उत्कट देश प्रेम का भी परि देती हैं। 'महाराजा शिवाजी का पत्र' तथा 'जागो फिर एक बार' कवि की राष्ट्री चेतना से युक्त देश प्रेम सम्बधी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

अधिकांश छायावादी कवि जगत से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर, स्वप्नों की रंगीनियों में खो गये, किन्तु निराला ने अपनी खुली आँखों से जनता के दुःख को देखा और उनके प्रति अपने हृदय की सच्ची सहानुभूति प्रकट की। 'भिक्षुक' इ प्रकार की संवेदनशील रचना है:—

> "वह आता
> दो टूक कलेजे के करता
> पछताता पथ पर आता।
> पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
> चल रहा लकुटिया टेक,
> मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को
> मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाये
> दो टूक कलेजे———।"

इसी प्रकार रूढ़िवादी हिन्दु समाज द्वारा शोषित विधवा के प्रति कविता में करुणापूर्ण हो कवि उसकी विवशता का भान कराता हुआ उसकी कारुणिक स्थिति का वर्णन करता है :—

"वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन।"

'निराला' अद्वैतवादी कवि है। 'शेफालिका' और 'जुही की कली' में जो अदृष्ट-सत्ता से जीवात्मा का सम्बन्ध दर्शाया गया है वह 'तुम और मैं' कविता मे बिल्कुल स्पष्ट हो गया है। प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र इसमे अंकित किये गये हैं, जिनमें मानवीकरण के चित्र सर्वोपरि हैं। कवि की निरीक्षण शक्ति अपूर्व है। 'जुही की कली', सध्या सुन्दरी', 'शरद पूर्णिमा की विदाई' आदि रचनाओं मे प्रकृति का नारी रूप सुन्दर बन पड़ा है। 'जुही की कली' विजन बन में वल्लरी पर सो रही है। सौभाग्य युक्त भावनाओं से वह युक्त है"...... । उसमें अमल कोमल तन वाली तरुणी का सौंदर्य है :—

"विजन बन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी—स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी—
जुही की कली,
दृग बंद किये शिथिल, पत्रांक में"

'संध्या सुन्दरी' कविता भी अद्वितीय है। कल्पना की तूलिका से व्यापक चित्रपटी पर, प्रकृति की पृष्ठभूमि मे कवि ने मनोरम चित्र अंकित किये हैं :—

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नही आभास।"

'गीतिका'— सन् १६३६ में 'निराला' के गीतों का संग्रह 'गीतिका' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। वैसे तो 'परिमल' में भी अनेक सुन्दर गीत हैं, किन्तु 'गीतिका' तो वास्तव में गीतो की सुन्दर माला है। आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी—अनेक गीतों से यह माला तैयार की गई है। कही आत्मा की उस विशाल अनन्त [illegible] की बीन सुनाई पड़ती है :—

"कैसी बजी बीन ?
सजी मैं दीन
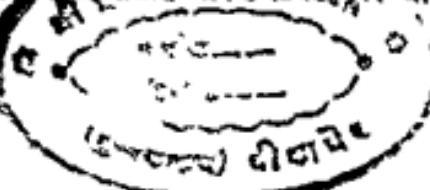
हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी ?
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी,
लीन स्वर सलिल में, मैं बन रही मौन।"

और बीन की इस मुमधुर ध्वनि को सुनकर आत्मा अभिसारिका बन जाती है :—

'मौन रही हार,
प्रिय पथ पर चलती
सब कहते शृंगार
कण कण कर कंकण प्रिय
किण् किण् रव किङ्किणी,
रणन् रणन् नूपुर, उर लाज।"

'गीतिका' जीव और ब्रह्म सम्बन्धी अनेक रहस्यवादी गीतों का संग्रह है। प्रसादजी ने 'गीतिका' के सम्बन्ध में लिखा है "गीतिका हिन्दी के लिए सुन्दर उपहार है। इसके चित्रों की रेखाएँ पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है.........।"

'अनामिका' (१९३८)—'अनामिका' निराला का प्रथम काव्य संग्रह था, जो कि सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ था। किन्तु ठीक १५ वर्ष बाद कवि ने अपनी अन्यान्य प्रौढ़ कविताओं के संकलन का नाम भी 'अनामिका' ही रखा। 'अनामिका' (१९३८) और 'तुलसीदास' (१९३८) निराला की प्रौढ़तम कृतियाँ हैं। 'अनामिका' में कवि की विचारधारा, भाव और शैली आदि में महान् परिवर्तन दीख पड़ता है। कवि का चिन्तन पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका है। कवि निराला का जीवन तप, त्याग और साधना से परिपूर्ण रहा है। वे जीवन भर विषम परिस्थितियों से जूझते रहे। वे अपनी महान कला साधना को माँ-भारती के चरणों में समर्पित कर देते हैं। प्रस्तुत काव्य ग्रंथ की रचनाओं का स्वर कवि का निजी स्वर है, जिसमें मौलिकता कूट कूट कर भरी है। इन रचनाओं में कला के दोनों पक्ष—भावपक्ष एवं कला पक्ष पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हैं। यद्यपि अनामिका' की अधिकांश रचनाएँ पर्याप्त लम्बी हैं, किन्तु शिथिलता तनिक भी नहीं आने पाई है। निःसंदेह ये कविताएँ हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। 'अनामिका' संग्रह की प्रमुख रचनाएँ हैं :—दान, वन बेला, सरोज स्मृति और राम की शक्तिपूजा।

'सरोज स्मृति' सन् १९३५ में कवि द्वारा लिखी गई थी। कविवर निराला की एक मात्र पुत्री सरोज के असामयिक एवं आकस्मिक निधन पर लिखी गई शोक संतप्त पिता की हार्दिक व्यथा को व्यंजित करने वाली यह एक मार्मिक रचना है। 'सरोज स्मृति' हिन्दी साहित्य का एक सर्वश्रेष्ठ शोक-गीत है।

'राम की शक्तिपूजा' में कवि निराला ने राम के चरित्र में जिस शील-दर्शन एवं शक्तिनिष्ठा का निरूपण किया है वह अभूतपूर्व है। राम का ईश्वर अथवा ब्रह्म स्वरूप तो अनेक साधकों ने दर्शाया है, किन्तु 'राम की शक्ति पूजा' के राम दुःख-सुख के राम अन्तर्द्वन्द्वों से प्रभावित होने वाले मानव के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। निराला के राम में मानव सुलभ दुर्बलताएँ हैं, वे आत्मग्लानि से व्यथित हैं, किन्तु राम की कठोर साधना को देखकर पाठक उनमें ईश्वरत्व की भी झांकी पा लेता है। निश्चय ही 'राम की शक्तिपूजा' निराला की एक अभूतपूर्व एवं प्रौढ़ काव्य-कृति है। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री के शब्दों में—"राम की शक्ति पूजा' जैसे स्वल्प आकार प्रकार का, परम प्रौढ़ प्रबन्ध-काव्य विश्व की किसी भी भाषा में कभी नहीं लिखा गया। 'राम की शक्तिपूजा' में पाण्डित्यपूर्ण, ओजस्विनी भाषा का सुघटित छंद के भीतर से सुसंगत प्रवाह तथा असाधारण भाव गरिमा विद्यमान है। जिस कारण वह पाश्चात्य 'एपिक' का सान्निध्य प्राप्त करती है। पौराणिक आख्यान के आधार पर रचित तथा सांकेतिक व्यंजनाओं से ओत-प्रोत होकर भी वह विशिष्ट मनोभूमि पर घटित होने वाले चारित्रिक घात-प्रतिघातों की सजीवता के कारण महाकाव्य सी महार्घ है।"

'राम की शक्तिपूजा' की निम्नांकित पंक्तियों में राम रावण के युद्ध संगठन, युद्ध की भयकरता एवं उग्रता का सशक्त भाषा में कितना सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया गया है :

'विच्छुरित वन्हि राजीवनयन हत लक्ष्य बाण,
लोहित लोचन रावण मद मोचन महीयान,
राघव लाघव रावण वारण गत युग्म प्रहर,
उद्धत लङ्कापति मर्दित कपि दलवल विस्तर,
अनिमेष राम विश्वजिद-दिव्य शर भंग भाव,
विद्धांगबद्ध कोदण्ड मुष्टि खर रुधिर स्राव।"

युद्ध में असफलता राम को विचलित कर देती है और चरम नैराश्य की स्थिति में वे अपने गांभीर्य को खो देते हैं :—

"लख शंकाकुल हो गये अतुलबल शेष शयन
खिच गये दृगों में सीता के राममय-नयन,
फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खल खल,
भक्ति नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल।"

राम के हृदय में सीता की स्मृति साकार हो जाती है और राजा जनक के

उपवन की स्मृति ताजी हो जाती है। उनमें शिव धनुष भंग करने के समय का पौरुष जागृत हो जाता है :—

"हर धनुर्भङ्ग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मित, सीता ध्यान लीन राम के अधर।"

युद्ध के भयानक एवं रौद्र दृश्यों में करुणा और फिर गंभीरता का उन्मेष होता है। निराला की वर्णन शक्ति, भावुकता के मेल में देखकर पाठक कवि की प्रतिभा से प्रभावित हो मन्त्रमुग्ध हो जाता है। 'राम की शक्ति पूजा' की रचना में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी पाई जाती है। डा॰ रामविलास शर्मा का कथन है कि "उसकी प्रतीक व्यंजना अद्‌भुत है।" लगता है कवि ने रावण को संसार की समस्त विघ्न बाधाओं के प्रतीक रूप में अंकित किया है। इस तमोगुण में राम के दिव्य शर कहीं खो जाते हैं। प्रस्तुत काव्य कृति का संदेश आशावादी है :—

"होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।
कह महा शक्ति राम के बदन में हुई लीन।"

वास्तव में 'राम की शक्तिपूजा' में निराला की कवि प्रतिभा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। कथावस्तु का प्रवाह स्वाभाविक है, भावुकता एवं कल्पना का घटनाचक्र के साथ जो अद्‌भुत सामञ्जस्य प्रस्तुत किया गया है, वह निराला के कला शिल्प के कौशल को दर्शाता है।

'तुलसीदास'—यह १०० छंदों का एक लघु-प्रबन्ध-काव्य (खण्ड-काव्य) है। 'तुलसीदास' की कथावस्तु स्वल्प एवं संक्षिप्त है। वास्तव में कवि का लक्ष्य तुलसी के जीवन की कथा प्रस्तुत करना नहीं है। कवि ने तुलसी के चरित्र को जन प्रचलित कथा के अन्दर से मनोवैज्ञानिक स्थिति के प्रकाश से ऊपर उठाया है। तुलसी में विभिन्न सस्कारों का उदय-अध्ययन, प्रकृति-दर्शन, नारी मोह, मानसिक संघर्ष और अन्त में नारी विजय आदि अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं को कथा के विस्तार हेतु लिया है।

'तुलसीदास' खण्ड काव्य की कथा का प्रारम्भ तुलसी के आविर्भाव काल की परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराते हुए कवि ने किया है। आर्य संस्कृति का सूर्य डूब रहा है और मुगल संस्कृति का चंद्र उदित हो रहा है :—

"भारत के नभ का प्रभापूर्ण,
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे, तमस्तूर्य दिङ्मण्डल।"

समाज में जड़ता और विलासिता का साम्राज्य स्थापित है और जन-जीवन चेतना शून्य हो क्षुद्र स्वार्थों में लीन है :—

"छल छल छल' कहता यद्यपि जल,
वह मंत्र मुग्ध सुनता 'कल-कल'।"

तुलसी अपने मित्रों के साथ चित्रकूट जाते हैं। वहाँ प्रकृति का संदेश प्राप्त कर उनका मन उर्द्धगामी होता है और अनेक स्तर पारकर जाता है :—

'करना होगा यह तिमिर पार,
देखना सत्य का मिहिर द्वार।"

आकाश में रत्नावली (पत्नी) की छवि को देखकर, उनके हृदय में मोह का प्रवेश होता है और उनका जिज्ञासु मन नीचे उतर आता है। तुलसी घर लौटते हैं, अन्तर्द्वन्द्व से अन्तर आन्दोलित है। जब रत्नावली बिना कहे अपने पीहर चली जाती है, तब तुलसी भी बिना पूर्व सूचना दिये ससुराल पहुँच जाते हैं। वहाँ पत्नी की फटकार मिलती है :—

"धिक ! आये यों तुम अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ कुलधर्म धूत।"

रत्नावली (पत्नी) की फटकार तुलसी के जीवन में महान् परिवर्तन ला देती है। वे गृह त्याग देते हैं। अब तुलसी की पत्नी सामान्यनारी के स्थान पर 'नील वसन शारदा' बन जाती है। वह उनके जीवन की महान प्रेरणा बन जाती है।

'निराला' के काव्य ग्रंथों में 'तुलसीदास' एक अत्यन्त सुगठित और प्रौढ़ रचना है। इतिहास और मनोविज्ञान से भाव ग्रहण कर कवि ने उन्हें प्रस्तुत कृति में मूर्तरूप प्रदान किया है। निराला प्रस्तुत रचना में एक क्रांतिदर्शी कवि के रूप में प्रकट हुए हैं। वे जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति के ह्रास के कारणों की ओर संकेत करते हैं, तो वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक जागरण के भाव जनमानस में भरना चाहते हैं। वे जन मानस में अगाध विश्वास और विजयोल्लास की प्रगाढ़ भावना भी उद्दीप्त करना चाहते हैं :—

"होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशि वासर,
× × × ×
भारती इधर, हैं उधर सकल

जड़ जीवन के संचित कौशल ।
जय इधर ईश, है उधर सबल माया कर।"

कवि देश के बिखरे हुए सभी तत्वों को एकत्रित कर, संगठित करना चाहता है। कवि ने 'तुलसीदास' में उदात्त चरित्र चित्रण द्वारा नाटकीय घटना संगठन का सुन्दर परिचय दिया है। कथोपकथन ओजपूर्ण एवं स्वाभाविक हैं। सम्पूर्ण कविता उपमा, रूपक तथा अनुप्रास आदि अनेक अलंकारों से अलंकृत है। ६ पंक्तियों के छंद में कवि ने जिस मौलिकता, लय तथा प्रवाहमयी भाषा शैली का सुन्दर प्रयोग किया है वह अभूतपूर्व है। अनेक विद्वानों ने इस छंद की मुक्त कंठ से सराहना की है। निःसंदेह निरालाजी ने छायावादी काव्यरचना को 'तुलसीदास' की रचना द्वारा पुष्ट एवं विकसित किया है। प्रस्तुत कृति में निराला ने एक कुशल कलाकार की भांति अनेक शब्दों को नया अर्थ बोध दिया है। कहीं-कहीं भावों की बिम्ब योजना द्वारा काव्य के सौन्दर्य को अत्यन्त उत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि 'तुलसीदास' ओजस्विनी भाषा में लिखा गया एक अति उत्कृष्ट कोटि की रचना है।

'निराला' अपने समय के सबसे बड़े क्रान्तिकारी कवि माने जाते हैं। काव्यगत परम्पराओं, रूढ़ियों एवं बन्धनों पर जितने अधिक प्रहार उन्होंने किये हैं, अन्य किसी कवि ने नहीं। 'परिमल', 'अनामिका' और 'गीतिका' आदि रचनाओं के माध्यम से कवि निराला अपने निश्चित मार्ग पर अबाध गति से दृढ़ चरण रखते हुए बढ़ते चले गये। 'निराला' के काव्य को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मत भिन्नताएँ रही हैं और उनका विरोध भी कुछ लोगों ने किया, किन्तु मां भारती का यह वरद पुत्र अपने मार्ग पर अडिग रहा और कोई भी निराला को अपने पथ से विचलित नहीं कर सका। उनके व्यक्तित्व में कविता को नई दिशा प्रदान कर नये आयाम देने की सामर्थ्य थी। प्रतिकूल परिस्थितियों में, अनेक मानसिक एवं आर्थिक संघर्षों के बीच हिन्दी का यह विद्रोही कलाकार अपनी लेखनी निरंतर चलाता रहा।

'कुकुरमुत्ता' (१९४२), 'अणिमा' (१९४३), 'बेला' (४६) और 'नये पत्ते' (१९४६), 'अर्चना' (१९५०) निरालाजी की प्रगतिवादी-काल की रचनाएँ हैं। 'कुकुरमुत्ता' असंस्कृत सामान्य दीन हीन, शोषित जन का प्रतीक है, जो अपने चारों ओर के स्वाभाविक वातावरण से बल प्राप्त कर, पोषण एवं विकास प्राप्त करता है। 'कुकुरमुत्ते' की अधिकांश कविताएँ व्यंग्य प्रधान हैं। 'अणिमा' में पुरानी परिपाटी पर लिखी गई रचनाएँ संकलित हैं। लगता है कवि छायावाद और प्रगतिवाद के दो-राहे पर खड़ा अपने साहित्यिक जीवन का लेखा-जोखा ले रहा है। निराला ने प्रसाद, शुक्ल, महादेवी वर्मा आदि पर कुछ प्रशस्तियाँ भी लिखी हैं।

'बेला', 'अपरा', 'नये पत्ते' कवि की उत्तरवर्ती काल की कृतियां हैं। 'बेला' में कवि एक नई दिशा में कदम बढ़ा रहा है—फारसी के छंद-शास्त्र की शैली पर निराला ने अनेक गज़लें लिखी हैं। यह निराला के नूतन गीतों का संग्रह है। इन गीतों (गज़लों) की भाषा प्रवाहमयी, सरल और मुहावरेदार है। भावों, छंदों एवं सर्गों का वैविध्य इसकी रचनाओं में पाया जाता है।

'नये पत्ते' कवि निराला का नवीनतम काव्य संग्रह है। प्रस्तुत संग्रह में कवि ने नई भाषा-शैली में अनेक व्यंग प्रधान रचनाएँ लिखी हैं। इस संकलन में कवि की अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ संगृहीत हैं। सामाजिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक चेतना को कवि ने अपनी कलम की नोक पर रखकर रचनाएँ लिखी हैं। 'चर्खा चला' शीर्षक कविता में वेदों से लेकर आधुनिक काल तक के विकास क्रम पर व्यंग किया है। कवि का विश्वास है कि सम्पूर्ण व्यवस्था सामंती ऐश्वर्य की रक्षा के लिये बनाई गई थी। 'देवी सरस्वती', 'तिलांजलि' और 'युगावतार रामकृष्ण परमहंस' इस संग्रह की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

'निराला' एक क्रान्तिकारी कवि होने के साथ ही एक श्रेष्ठ गद्य-लेखक भी हैं। वास्तव में उनकी प्रतिमा बहुमुखी थी। निरालाजी ने अपनी हार्दिक संवेदना, एक गद्य लेखक के रूप में, सामान्य व्यक्तियों के यथार्थ रेखा चित्रों—'बुल्लेसुर-बकरिहा', 'चतुरी चमार' और 'कुल्ली भाट' जैसे चरित्रांकनों में प्रकट की है। इसके अतिरिक्त निरालाजी ने 'अभ्युदय' तथा मतवाला' एवं 'सुधा' आदि पत्रों का एक लम्बे समय तक सम्पादन भी किया था।

'निरालाजी' अपने जीवन के कुछ अन्तिम वर्षों में लगभग अर्द्ध-विक्षिप्तावस्था की स्थिति में रहे, किन्तु उनका सृजन कार्य निरन्तर चलता रहा। दर्शन शास्त्र के गहनतम विषयों से लेकर यथार्थ-परक, सामान्य मानव से सम्बन्ध रखने वाली धरती की अनेक रचनाएँ उन्होंने लिखी हैं। हिन्दी साहित्य के विविध अंगों को उन्होंने मण्डित किया है, पर कवि के रूप में उन्हें अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई है। जो ओज, नूतनता, कला, विषय एवं रचना शैली का वैविध्य 'निराला' के काव्य में पाया जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

'बेला', 'अपरा', 'नये पत्ते' कवि की उत्तरवर्ती काल की कृतियां हैं। 'बेला' में कवि एक नई दिशा में कदम बढ़ा रहा है—फारसी के छंद-शास्त्र की शैली पर निराला ने अनेक गज़लें लिखी हैं। यह निराला के नूतन गीतों क संग्रह है। इन गीतों (गज़लों) की भाषा प्रवाहमयी, सरल और मुहावरेदार है। भावों, छंदों एव लयों का वैविध्य इसकी रचनाओं में पाया जाता है।

'नये पत्ते' कवि निराला का नवीनतम काव्य संग्रह है। प्रस्तुत संग्रह मे कवि ने नई भाषा-शैली में अनेक व्यंग प्रधान रचनाएँ लिखी हैं। इस संकलन मे कवि की अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ संगृहीत हैं। सामाजिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक चेतना को कवि ने अपनी कलम की नोक पर रखकर रचनाएँ लिखी हैं। 'चर्खा चला' शीर्षक कविता मे वेदों से लेकर आधुनिक काल तक के विकास क्रम पर व्यंग किया है। कवि का विश्वास है कि सम्पूर्ण व्यवस्था सामंती ऐश्वर्य की रक्षा के लिये बनाई गई थी। 'देवी सरस्वती', 'तिलांजलि' और 'युगावतार रामकृष्ण परमहंस' इस संग्रह की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं।

"निराला' एक क्रान्तिकारी कवि होने के साथ ही एक श्रेष्ठ गद्य-लेखक भी हैं। वास्तव में उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। निरालाजी ने अपनी हार्दिक संवेदना, एक गद्य लेखक के रूप मे, सामान्य व्यक्तियों के यथार्थ रेखा चित्रों—'बुल्लेसुर-बकरिहा', 'चतुरी चमार' और 'कुल्ली भाट' जैसे चरित्रांकनों में प्रकट की है। इसके अतिरिक्त निरालाजी ने 'अभ्युदय' तथा मतवाला' एवं 'सुधा' आदि पत्रों का एक लम्बे समय तक सम्पादन भी किया था।

'निरालाजी' अपने जीवन के कुछ अन्तिम वर्षों में लगभग अर्द्ध-विक्षिप्तावस्था की स्थिति मे रहे, किन्तु उनका सृजन कार्य निरन्तर चलता रहा। दर्शन शास्त्र के गहनतम विषयों से लेकर यथार्थ-परक, सामान्य मानव से सम्बन्ध रखने वाली धरती की अनेक रचनाएँ उन्होंने लिखी हैं। हिन्दी साहित्य के विविध अंगों को उन्होंने मण्डित किया है, पर कवि के रूप में उन्हें अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई है। जो ओज, नूतनता, कला, विषय एवं रचना शैली का वैविध्य 'निराला' के काव्य [illegible] जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

१० कवि 'दिनकर' और उनका 'कुरुक्षेत्र'

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्रान्तिकारी, विद्रोही, राष्ट्रीय एवं ओजस्वी कवि हैं। जिस समय हिन्दी काव्य में छायावाद और रहस्यवाद का बोलबाला था, कवि कल्पना के वायवीय लोक में विचरण कर, अज्ञात प्रियतम की स्मृति में अश्रु बहाने, जीवन की यथार्थता से पलायन कर वैयक्तिकता में डूबे हुए थे, उस समय कवि दिनकर छायावाद के प्रति अनास्था का विद्रोही स्वर लेकर अपनी ओजस्वी वाणी में प्रकट हुए। दिनकर ने कविता को कल्पना के वायवीय लोक से उतार कर ठोस धरातल पर समासीन किया। दिनकर की काव्य चेतना वर्तमान के प्रति सजग, प्राचीन आध्यात्मिक आदर्शों के प्रति सहृदय तथा नये युग के आगमन में पूर्ण आस्था रखती है। उन्होंने शोषित-पीड़ित मानवों के भावों को अपनी कविताओं में मुखरित कर, जन जागरण का नूतन संदेश दिया। देश के स्वतन्त्रता संग्राम में 'दिनकर' ने अपनी लेखनी एवं ओजस्वी वाणी द्वारा अपूर्व योगदान दिया।

'दिनकर' की काव्य धारा भारतीय संस्कृति के गौरवमय अतीत के वैभवशाली कगारों को सिक्त करती हुई प्रवाहित हुई है। उनके काव्य में भारत की परम्परा एवं संस्कृति का सजीव चित्र अंकित हुआ है। 'दिनकर' में यदि अपने देश के अतीत के प्रति स्नेह एवं गौरव का भाव है, तो वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रति अगाध आस्था है।

'दिनकर' पर कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, काजी नजरूल इस्लाम, ओज आदि कवियों का प्रभाव पड़ा है। दिनकरजी ने एक साक्षात्कार में कहा था—"अपने ऊपर मैं विवेकानन्द, गांधी, तिलक, शेली, तौलस्ताय और बर्ट्रेंड रसल का प्रभाव मानता हूँ। कवियों में कालिदास, कबीर, तुलसी, इक्बाल और रवीन्द्र मेरे परम प्रिय हैं।"

'दिनकर' अपने युग के उन संवेदनशील युवक वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो

उग्रदल के नेता सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेन्द्र देव के साथ था। उनकी सहानुभूति देशप्रेमी विद्रोहियों के साथ प्रारम्भ से ही रही है। अतः राष्ट्रीय कवितायें लिखने की प्रेरणा उन्हें इन्हीं देशभक्त विद्रोही नेताओं से मिली। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों की रचनाओं का प्रभाव भी दिनकर पर पड़ा है। उनके कवि व्यक्तित्व का निर्माण देश की विद्रोही, राष्ट्रीय चेतना से हुआ है।

'रेणुका' और 'हुंकार' दिनकरजी की कविताओं के प्रारम्भिक संग्रह हैं। यद्यपि उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में राष्ट्रीय भावना के अतिरिक्त प्रकृति-प्रेम, रूप और शृंगार के प्रति आकर्षण है, किन्तु उनकी इन रचनाओं का प्रिय वास्तविक जगत का हाड़ मांस का मानव है, छायावादी अज्ञात लोक का अशरीरी नहीं। कवि स्वयं कल्पना लोक में विचरण न करता हुआ, कल्पना को ही इस धरती पर आमंत्रित करता है:—

"व्योम कुञ्जों की सखी अयि कल्पने,
आ उतर हँसले जरा वनफूल से।"

कवि दिनकर की कविताओं में राष्ट्रीय भावना तथा विद्रोह का स्वर प्रबल है। उनकी तरुणाई का आक्रोश उनकी अनेक रचनाओं में प्रस्फुटित हुआ है जो कि 'हिमालय' 'नई दिल्ली' 'विपथगा' और 'अनल किरीट' आदि कविताओं में सहसा फूट पड़ा है। उनकी पूर्व स्वातंत्र्य-काल की रचनाओं में अतीत के प्रति गौरव, वर्तमान यथार्थ के प्रति सजगता, निराशा और आक्रोश है। अपनी 'हिमालय' शीर्षक कविता में कवि ने हिमालय के माध्यम से समूचे देश का आह्वान किया है:—

"मेरे नगपति मेरे विशाल!
साकार दिव्य गौरव विराट! पौरुष के पुञ्जीभूत ज्वाल
मेरी जननी के हिम किरीट, मेरे भारत के दिव्य भाल!
× × × ×
कितनी मणियाँ लुट गईं, मिटा कितना तेरा वैभव अशेष,
तू ध्यान मग्न हो रहा इधर, वीरान हुआ प्यारा स्वदेश!"

दिनकर' राष्ट्र की समस्या का समाधान गांधीजी की अहिंसा में न देखकर, विद्रोही और क्रान्ति के मार्ग द्वारा खोजते हैं। अतः कवि [illegible] अपेक्षा अर्जुन, भीम आदि वीरों को लौटाने की प्रार्थना क[illegible]

"रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ[illegible]
जाने दे उसको स्वर्ग धीर[illegible]

> पर फेर हमें गाण्डीव, गदा,
> लौटा दे अर्जुन, भीम वीर।"

'रेणुका' की कुछ कविताएँ राष्ट्रवादी एवं क्रांति-परक हैं तथा क
छायावादी प्रवृत्ति से प्रभावित हैं। 'हुंकार' में कवि की सम्पूर्ण हुंकार
बरबस से आहूत होती है, क्रांति की चिनगारियाँ फूट पड़ती हैं। क्रांति कुमा
मानवी के रूप में प्रकट होती है —

> 'मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात,
> किस रोज किधर से आऊँगी,
> मिट्टी से किस दिन जाग क्रुद्ध,
> अम्बर में आग लगाऊँगी।"

जब मानवता मन मारकर अत्याचार सहती है, तब क्रांति-कुमारी यौवन चमचमाने लगता है और वह सहसा हुंकार भरकर अत्याचारियों पर पड़ती है:—

> "चढ़कर जनून सी चलती हूँ मृत्युञ्जय वीर कुमारों पर,
> आतक फैल जाता कानूनी पार्लमेंट, सरकारों पर,
> 'नीरो' के जाते प्राण सूख मेरे कठोर हुंकारों पर,
> कर अट्टहास इठलाती हूँ ज़ारों के हाहाकारों पर।"

'रसवंती' में कवि के शृंगार-परक वैयक्तिक भावात्मक गीत हैं, जिस सौंदर्य के प्रति आकर्षण तथा नारी के प्रति स्नेह एवं सम्मान का भाव है। क्रांतिकारी और राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने के बाद कवि ने 'रसवंती' में अपनी रसभरी भावनाओं को व्यंजित किया है। कवि ने स्वयं लिखा है—"सुय तो मुझे 'हुंकार' से मिला, लेकिन आत्मा मेरी 'रसवंती' में बसती है।" 'रसवंती' की विचारधारा का पूर्ण विकास दिनकर के नवीन काव्यग्रंथ 'उर्वशी' में हुआ है। निःसंदेह 'उर्वशी' शृंगार रस का एक अपूर्व काव्य है। श्री बेनीपुरीजी ने कहा था—"अंगारे, जिनपर इन्द्रधनुष खेल रहे हैं। 'रेणुका', 'हुंकार', 'सामधेनी' 'कुरुक्षेत्र', और 'रश्मिरथी—' में दहकते अंगारों का तेज है। इन्द्रधनुषी रं 'रसवंती' में छिटका था। 'उर्वशी' में वह मध्याह्न-सूर्य के उभार पर पहुँच गया है।"

'कुरुक्षेत्र'—दिनकर का यह एक विचारात्मक, समस्याप्रधान खण्ड-काव्य है। प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य (खण्डकाव्य) में कवि ने युद्ध और शांति की समस्या को उठाया है और उसका युगानुकूल समाधान भी प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत ग्रंथ के

निवेदन में दिनकर ने लिखा है—"कुरुक्षेत्र, की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न 'महाभारत' को दोहराना ही मेरा उद्देश्य है। मैं जरा भी दावा नहीं करता कि 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म और युधिष्ठिर 'महाभारत' के ही भीष्म और युधिष्ठिर हैं। यद्यपि मैंने सर्वत्र ही इस बात का ध्यान रखा है कि भीष्म और युधिष्ठिर के मुख से कोई ऐसी बात न निकल जाय जो द्वापर के लिये अस्वाभाविक हो। हाँ इतनी स्वतन्त्रता जरूर ली गई है कि जहाँ भीष्म किसी ऐसी बात का वर्णन कर रहे हों जो हमारे युग के अनुकूल पड़ती हो, उसका वर्णन नये और विशद रूप से कर दिया जाय।"

द्वितीय विश्व-महायुद्ध के बाद विश्व के अनेक राष्ट्रों के विचारकों का ध्यान युद्ध के भयंकर परिणामों की ओर आकृष्ट हुआ था। युद्ध और शान्ति की समस्या मानव समाज की चिरंतन समस्या है, जो सनातन काल से चली आ रही है। आज तक मनुष्य इस समस्या का समाधान नहीं खोज पाया है। युद्ध मानव समाज के लिये वरदान है या अभिशाप-यह भी एक पहेली है। द्वितीय महायुद्ध के भीषण नर संहार ने लगता है दिनकर को भी सोचने के लिये बाध्य किया और सन् १६४२ में 'कलिंग विजय' शीर्षक एक कविता उन्होंने लिखी थी। प्रस्तुत रचना में कवि ने युद्ध की समस्या पर कुछ विचार किया था। 'कलिंग विजय' में अशोक की चिन्ता एवं करुणा पर गांधी-की अहिंसा का प्रभाव दीख पड़ता है। किन्तु 'कुरुक्षेत्र' में 'दिनकर' ने एक नूतन दृष्टिकोण से युद्ध की समस्या पर विचार किया है। 'महाभारत' में यद्यपि पाण्डवों ने विजय प्राप्त की थी, किन्तु युद्ध द्वारा हुए महा नाश को देखकर युधिष्ठिर शोक विह्वल हो गये और उनके हृदय में विरक्त होने का भाव जागृत हुआ। संभवतः 'कुरुक्षेत्र' के रचयिता का ध्यान इस समस्या का समाधान खोजते हुए 'महाभारत' के 'शान्ति-पर्व' की ओर गया हो। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' के लिए 'महाभारत' के केवल दो पात्रों भीष्म और युधिष्ठिर को ग्रहण किया है।

'कुरुक्षेत्र' पर बर्ट्रेण्ड रसल के विचारों तथा लोक-मान्य बालगंगाधर तिलक के 'गीता रहस्य' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। रसल बीसवीं शताब्दी के निर्भीक स्वतन्त्र विचारक एवं दार्शनिक हैं। विज्ञान के सम्बन्ध में रसेल का यह कहना है कि विज्ञान स्वयं में निरपेक्ष है—न अच्छा न बुरा, टेकनीक के प्रयोग के आधार पर ही हम उसे अच्छा या बुरा कह सकते हैं। शिवत्व और
पर वह बड़े से बड़ा निर्माण कर सकता है और
यह बड़े से बड़ा विनाश भी। 'कुरुक्षेत्र' के पष्ट
सर्वथा सहमति प्रकट करते हैं—

"यह मनुज ज्ञानी, शृगालों, कुक्कुरों से हीन,
हो किया करता ग्रनेकों क्रूरकर्म मलीन,
देह ही लड़ती नहीं है जूझते मन-प्राण,
साथ होते ध्वंस में इनके कला विज्ञान।
इस मनुज के हाथ में विज्ञान के भी फूल,
वज्र होकर छूटते, शुभधर्म अपने भूल।"

'कुरुक्षेत्र' में कवि ने विज्ञान में निष्णात मानव के क्रूर कर्मों की भर्त्सना की है और उसे शृगालों एवं कुक्कुरों से भी हीन बतलाया है। मानव शरीर धारण करने से ही कोई मानव नहीं हो जाता, किन्तु मानवोचित उदात्त कार्य करने से ही वह मानव कहलाने का अधिकारी है। रसल को यह आशंका थी—कि विध्वंसात्मक होने के कारण विज्ञान के विरुद्ध कोई ग्रान्दोलन छिड़ सकता है। 'कुरुक्षेत्र' का कवि यह ग्रान्दोलन छेड़ देता है और मनुष्य को विज्ञान के मोह को त्यागने की बात कहता है—

"सावधान मनुष्य, यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु ग्रभी ग्रज्ञान;
फूल कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा ग्रंग, तीखी है बड़ी यह धार।"

पृ० ११७

रसेल ने ग्रनेक बार वैयक्तिक उत्प्रेरणा एवं स्वतन्त्रता पर भी बल दिया है। 'कुरुक्षेत्र' का कवि भी व्यक्ति की-स्वतंत्रता का समर्थक है—

"उद्भिज-निभ चाहते सभी नर
बढ़ना मुक्त गगन में,
ग्रपना चरम विकास ढूंढना
किसी प्रकार भुवन में।"

पृ० १२७

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि 'कुरुक्षेत्र' में वर्णित विचारों पर बट्रेंड रसल का बहुत प्रभाव पड़ा है। रसल की भांति 'दिनकर' के विचार ग्रत्यन्त उदात्त एवं मानवतावादी हैं; वे क्षुद्र संकीर्णता से ऊपर उठे हुए हैं।

'कुरुक्षेत्र' पर बालगंगाधर तिलक के 'गीता रहस्य' अथवा 'कर्मयोग-शास्त्र' का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वास्तव में 'श्रीमदभागवद गीता' और 'कुरुक्षेत्र' मे कुछ समानता भी हैं। गीता में अर्जुन को युद्ध में होने वाले स्वजनों के संहार की कल्पना से मोह हुआ था, जिसका निराकरण करने के लिये श्रीकृष्ण को अठारह अध्यायों के रूप मे उपदेश देने पड़े। 'कुरुक्षेत्र' मे भी युधिष्ठिर अर्जुन के समान ही मोह ग्रस्त एवं व्यथित हैं और भीष्म पितामह को 'गीता' के कृष्ण के समान ही उपदेश देना पड़ा। कवि ने अपने निवेदन में लिखा है—"यह (कुरुक्षेत्र) की कथा युद्धान्त की है। युद्ध के प्रारम्भ में स्वयं भगवान कृष्ण ने अर्जुन से जो कुछ कहा था, उसका सारांश भी अध्याय के विरोध में तपस्या के प्रदर्शन का निवारण ही था।" इस अंश से स्पष्ट होता है कि 'कुरुक्षेत्र' का कवि 'गीता' से प्रभावित है और यह प्रभाव तिलक के 'गीता-रहस्य' के माध्यम से पड़ा है।

'दिनकर जी' ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक—"संस्कृति के चार अध्याय" (पृष्ठ ५१५) में लिखा है, "हमारा मत है कि 'गीता' एक बार तो भगवान श्री कृष्ण के मुख से कही गई, किन्तु दूसरी बार उसका सच्चा आख्यान लोकमान्य तिलक ने ही किया है। इन दोनों के बीच की अन्य सभी टीकाएँ और व्याख्याएँ 'गीता' के रूप पर बादल बनकर छाती रही हैं।"

'गीता' में कर्म की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। 'कुरुक्षेत्र' में भी दिनकर जी कर्म की अनिवार्यता स्वीकारते हैं—

"कर्म भूमि है निखिल महीतल,
जब तक नर की काया,
तब तक है जीवन के अणु अणु
में कर्त्तव्य समाया।
क्रियाधर्म को छोड़ मनुज
कैसे निज सुख पायेगा?
कर्म रहेगा साथ, भाग वह
जहाँ कहीं भी जायेगा।"

पृ० १५७

श्री तिलक की यह स्थापना कि 'श्रीमद्भागवद् गीता' निवृत्तिपरक ग्रंथ नहीं है, अपितु प्रवृत्तिपरक, कर्मयोग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाला ग्रंथ है। अनेक विद्वानों ने तिलक की इस बात का समर्थन किया है। 'कुरुक्षेत्र' के सप्तम सर्ग में कवि दिनकर ने निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्गों का वर्णन करते हुए तिलक की भांति प्रवृत्ति का मण्डन और निवृत्ति मार्ग का खण्डन f

"जनाकीर्ण जग से व्याकुल हो निकल भागना वन में,
धर्मराज, है घोर पराजय नर की जीवन रण में।
यह निवृत्ति है ग्लानि, पलायन का यह कुत्सित क्रम है,
निःश्रेयस, यह श्रमित, पराजित, विजित बुद्धि का भ्रम है।"

पृ० १२४

श्री बालगंगाधर तिलक की गीता (कर्म योग शास्त्र) से तो दिनकरजी प्रभावित हुए ही हैं, पर साथ ही उनके नैतिक सिद्धान्तों को भी 'कुरुक्षेत्र' में उन्होंने स्वीकार किया है। तिलक ने एक प्रश्न उठाया है कि छल, कपट और धोखे से परिपूर्ण इस संसार में सत्य और अहिंसा आदि गुणों का उपयोग कहाँ तक किया जावे। इस सम्बन्ध में तिलक का स्पष्ट मत है कि दुष्ट मनुष्य के साथ 'शठे शाठ्यं समाचरेत्,' के अनुसार व्यवहार करें-दुष्ट व्यक्ति का अन्याय स्वीकार करना पाप है। श्रीदिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में इस बात को स्वीकार किया है:—

"छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग तप से काम ले, यह पाप है
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे,
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो"

पृ० २१

तिलक के अनुसार वैदिक तथा अन्य सभी धर्मों का परम उद्देश्य आत्म कल्याण अथवा मोक्ष है। कवि दिनकर पर भी इस समन्वय सिद्धान्त का प्रभाव पड़ा है। भीष्मपितामह 'कुरुक्षेत्र' के सप्तम सर्ग में युधिष्ठिर से कहते हैं—

"भोगो तुम इस भांति मृत्ति को
दाग नहीं लग पाये,
मिट्टी में तुम नहीं, वही
तुम में विलीन हो जाये।
और सिखाओ भोगवाद की
यही रीति जन जन को,
करें विलीन देह को मन में
नहीं देह में मन को।"

पृ० १७७

इस प्रकार हम उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि 'कुरुक्षेत्र' दिनकर की विचारधारा पर श्री बालगंगाधर तिलक की प्रसिद्ध पुस्तक 'गीता—

त्र' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। तिलक के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त—'स्वतंत्रता रा जन्म सिद्ध अधिकार है' तथा 'अन्याय का दमन अन्याय से भी' दिनकर विचारधारा के मूल तत्व हैं।

'कुरुक्षेत्र' का आधार प्रागैतिहासिक-पौराणिक होते हुए भी दिनकरजी ने की समस्या तथा राजनैतिक एवं सामाजिक प्रसंगों को युगीन दृष्टि से नये देश्य में देखा है। युद्ध की समस्या अनादि काल से बनी हुई है। इसे हमें गत रूप से नहीं, अपितु समष्टिगत रूप से देखना होगा। समाज के लिए को धर्म और न्याय के लिए प्रतिशोध की भावना से युद्ध भी करना है—

> "पाप हो सकता नहीं वह युद्ध है,
> जो खड़ा होता ज्वलित प्रतिशोध पर।"

महाभारत का युद्ध अन्याय के प्रति न्याय का, अनीत के विरुद्ध नीति का । अतः इस युद्ध का दायित्व न्याय को चुराने वाले पर है—

> "चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही ह
> युधिष्ठिर! स्वत्व की अन्वेषणा पातक नही है।
> नरक उसके लिये जो पाप को स्वीकारते हैं,
> न उनके हेतु, जो रण में उसे ललकारते हैं।"

महाभारत के युद्धोपरान्त युधिष्ठिर के मन में जो अनुताप और आत्मग्लानि त्म-भर्त्सना का भाव समाहित हुआ है, उसे तिरोहित करने के लिये भीष्म वि ने जो मर्मस्पर्शी उपदेशात्मक बातें कहलवाई हैं वे युद्ध के दायित्व का करने में समर्थ हैं। व्यक्तिधर्म और समाजधर्म का उचित विवेचन करते म पिता यह कहते हैं—

> "व्यक्ति का है धर्म तप करुणा क्षमा,
> व्यक्ति की शोभा विनय भी त्याग भी—
> किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का,
> भूलना पड़ता हमे तप त्याग का।"

नीति निपुण भीष्म यद्यपि शरीर से कौरवों के साथ थे, किन्तु अन्तर से के साथ थे। मनोवैज्ञानिक रूप से यह रहस्य भीष्म की ... ग्नपंक्तियों मे प्रकट हुआ है—

> "धर्म स्नेह दोनों प्यारे थे,
> बड़ा कठिन निर्णय था,

> अतः एक को देह, दूसरे
> को दे दिया हृदय था।"
> \+ + + +
> "धर्म पराजित हुआ
> स्नेह का डंका बजा विजय का
> मिली देह भी उसे,
> दान था जिसको मिला हृदय का।"

आज तो मानव के सामने अनेक समस्याएँ हैं—युद्ध और शांति की, व्य धर्म और समाजधर्म की, विज्ञान और आध्यात्म की, भाग्यवाद और कर्मवाद आ की। 'कुरुक्षेत्र' में कवि दिनकर ने इन सभी समस्याओं को उठाया है और भी के माध्यम से युगानुकूल एवं परिस्थिति-सापेक्ष समाधान भी बतलाया है। समाज सच्ची शांति की स्थापना तब तक नहीं हो सकती, जबतक मानव में व्यक्तिगत भोग, लोभ एवं धन संचय की प्रवृत्ति बनी रहेगी—

> "जबतक मनुज मनुज का
> यह सुख भाग नहीं सम होगा,
> शमित न होगा कोलाहल
> संघर्ष नहीं कम होगा।
> था पथ सहज अतीव,
> सम्मिलित हो समग्र सुख पाना,
> केवल अपने लिए नहीं,
> कोई सुख भोग चुराना।
> इस वैयक्तिक भोग वाद से,
> फूटी विष की धारा,
> तड़प रहा जिसमें पड़कर
> मानव समाज यह सारा।"

भीष्म पितामह ने मनुष्य की कुटिल बुद्धि को भी संघर्ष और युद्ध के लिये उत्तरदायी ठहराया है। यदि मानव हृदय के भावों को मानकर बुद्धि के शासन को स्वीकार नहीं करें तो अनेक संघर्ष टल सकते हैं—

> "सदा नहीं मानापमान की बुद्धि उचित सुधिलेती।
> करती बहुत विचार, अग्नि की शिखा बुझा है देती।
> \+ + +

करयाता यदि मुक्त हृदय को मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बाँह दलित को मंत्री के आसन से।"

'कुरुक्षेत्र' में कवि ने कर्म से उदासीन, भाग्यवादियों को भी सचेत कर
द का सच्चा संदेश दिया है—

"ब्रह्म से कुछ लिखा भाग्य में,
मनुज नहीं लाया है।
अपना सुख उसने अपने भुज-
बल से ही पाया है।"

प्रकृति अतुल सम्पत्ति एवं वैभव से परिपूर्ण है। प्रकृति के इस असीमित
र का उपयोग करने का मनुष्य को पूर्ण अधिकार है—

"जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है
वह मनुज मात्र का धन है
धर्मराज उसके कण कण का
अधिकारी जन जन है।"

'कुरुक्षेत्र' का दर्शन एवं मूललक्ष्य मानवतावाद की प्रतिष्ठापना करना है।
ार स्वर्ण मनुष्य को वास्तविक सुख नहीं देसकता। जब मानव मानव के प्रति
प्रेम से युक्त होगा किसी भी व्यक्ति के श्रम का अन्यायपूर्ण शोषण और दोहन
ोगा, दीन हीन एवं उत्पीड़ित मानवों के प्रति मानव का सवेदना का भाव
तभी अनेक विषमतायें दूर होगी तथा वर्त्तमान समस्याओं का समाधान प्राप्त
। कुरुक्षेत्र' का कवि आस्थावान है, उसे विश्वास है कि जिस साम्यवाद का
उसने देखा है, वह साकार होगा। मानव जाति के ज्योतिर्मय स्वर्णिम भविष्य
ा कवि की पूर्ण आस्था है तभी वह भीष्मपितामह के श्रीमुख से कहलवाता है—

"आशा का प्रदीप जलाये चलो धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण भीति से,
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से।

× × ×

स्नेह बलिदान होंगे माप नरता के एक
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।"

नि:संदेह 'कुरुक्षेत्र' दिनकर की असाधारण कृति है। इसकी एक एक पंक्ति
ने आशा का चिर आलोक विकीर्णकर आज के मानव को गौरव से युक्त,

काल सापेक्ष नव संदेश दिया है। अनेक नूतन स्थापनायें एवं नव संदेश कवि अपने हैं।

'कुरुक्षेत्र' के अतिरिक्त दिनकर के अन्य उत्तरवर्ती श्रेष्ठ प्रबंध काव्य 'रश्मिरथी' और 'उर्वशी' हैं। 'रश्मिरथी' में कवि ने महारथीकर्ण के चारित्रिक गुणों को अंकित किया है। 'उर्वशी' में पुरुरवा और उर्वशी के पौराणिक आख्यान को लेकर कवि चला है, किन्तु भाव, कल्पना और विचारों से परिपुष्ट यह एक प्रबुद्ध काव्य कृति है। जीवन के अनेक शाश्वत प्रश्नों—जन्ममृत्यु, प्रणय-शृंगार, वात्सल्य प्रेम और मोह आदि की सुन्दर विवेचना 'उर्वशी' में की गई है।

'दिनकर' अपने युग के सच्चे कवि हैं। समय के साथ वे निरंतर आगे बढ़ते रहे हैं। भारत के ऊपर चीन के आक्रमण को देखकर कवि का विद्रोही रूप प्रकट हुए बिना न रहा। 'परशुराम की प्रतीक्षा' इसी का प्रतिफल है। परशुराम आक्रोश के चिरंतन प्रतीक है; अतः उन्ही के माध्यम से कवि दिनकर ने देश की तरुणाई का आह्वान किया।

श्री दिनकर हिन्दी के ओजस्वी, राष्ट्रीय एवं विद्रोही कवि होने के साथ ही एक महान चिंतक एवं उच्चकोटि के विद्वान भी हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' ग्रंथ आपके गहन अध्ययन, चिन्तन एवं पाण्डित्य का परिचायक है।

---
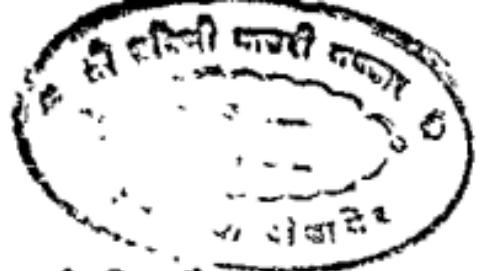
११ महादेवी और उनकी साहित्य साधना

आधुनिक युग के हिन्दी साहित्यकारों में श्रीमती महादेवी वर्मा का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं अन्यतम स्थान है। छायावादी काल के चार प्रमुख कवियों में वे अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। 'प्रसाद' ने छायावाद को जन्म दिया, 'निराला' और पंत ने उसमें ओज और मधुरता का सन्निवेश किया, तो महादेवी ने उसमें शुद्ध आत्मानुभूति की व्यंजना कर प्राणप्रतिष्ठा की। उनकी कविता स्रोतस्विनी की भांति अंतस से प्रकट हुई है, जिसमें अनुभूति और कल्पना का सुन्दर सामञ्जस्य हुआ है। अपने अंतःकरण के कोमल एवं सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना जितनी सफलता के साथ वे कर सकी हैं, अन्य अनेक कवि नहीं कर सके। आत्मपरक कवितायें लिखने में वे अद्वितीय हैं। उनकी काव्यधारा जिस दिशा की ओर उन्मुख हुई निरंतर उसी दिशा में प्रवाहित है। उनके समकालीन अनेक कवि श्लथ होकर एक ओर बैठ गये अथवा उन्होंने अपनी काव्य दिशा में परिवर्तन कर लिया, किन्तु यह रहस्य-साधिका अपना दृढ़ विश्वास लिये अपने निर्दिष्ट पथ पर आज भी एकाकिनी है। उनके गीत नवनीत सदृश्य कोमल, मर्मस्पर्शी एवं मधुर वेदना से परिपूर्ण हैं। वे आधुनिक काव्य की एकांत साधिका हैं, जिनके व्यक्तित्व में काव्यकला, संगीतकला एवं चित्रकला की त्रिवेणी का सुन्दर संगम हुआ है।

महादेवी जी को एक सफल रहस्यवादी कवयित्री बनाने में उनके पारिवारिक संस्कारों, कलापूर्ण एवं साहित्यिक वातावरण तथा अन्य परिस्थितियों ने पर्याप्त योगदान दिया है। अतः उनके व्यक्तित्व को ठीक ठीक समझने के लिये उनके पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण के अतिरिक्त उनकी वैयक्तिक परिस्थितियों से अवगत होना परम आवश्यक है। महादेवी का जन्म सन् १६०७ में एक प्रतिष्ठित, सुशिक्षित एवं सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा एम० ए; एल एल० बी० इन्दौर के 'डेलीकॉलेज' में प्राध्यापक थे। माता श्रीमती हेमरानी देवी एक विदुषी, कलात्मक अभिरुचिवाली धर्मपरायण नारी थी।

बचपन से ही महादेवी को साहित्य, चित्रकला एवं संगीत की शिक्षा प्राप्त हुई थी। इनकी माता मीरा के पदों को गाकर महादेवी को सुनाया करती थी जिससे महादेवी के कोमल हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। सन् १९१६ में केवल ९ वर्ष की अल्पायु में ही इनका विवाह श्री रूपनारायण वर्मा के साथ कर दिया गया था, जिसके कारण उनकी शिक्षा का क्रम टूट गया। क्योंकि महादेवी के श्वसुर स्त्री शिक्षा के समर्थक नहीं थे। किन्तु श्वसुर का देहावसान होजाने पर आपने फिर से एम० ए० तक की शिक्षा ग्रहण की।

इसी बीच आपने गौतम के जीवन और दर्शन का अध्ययन किया, जिसका प्रभाव आपके जीवन और विचारों पर प्रचुर मात्रा में पड़ा और कभी आपने बौद्ध भिक्षुणी के रूप में जीवन-यापन करने का निश्चय किया। किन्तु परिजनों के विरोध करने के फलस्वरूप वे भिक्षुणी तो न बन सकीं, पर तभी से अपने पति से अलग रहकर एक सेवाभावी, साध्वी नारी के रूप में, साहित्य साधना में रत हो, सादा जीवन व्यतीत कर रही हैं। एक दीर्घकाल से (सन् १९३२ से) आप प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या के सम्मानित पद पर कार्य कर रही हैं। लगता है। उन्होंने निरीह व्यक्तियों की सेवा करने का व्रत सा ले रखा है, क्योंकि वे अवकाश मिलने पर गावों में जाकर वहाँ के लोगों की सेवा-सुश्रूषा एवं दवा-दारू करने में निरत रहती हैं। मानवता की सेवा करने के पश्चात जो समय उन्हें मिलता है उसमें वे कला और साहित्य की साधना में लीन रहती हैं। महादेवी के ही शब्दों में—"मेरी सम्पूर्ण कविता का रचना काल कुछ घड़ों में ही सीमित किया जासकता है। प्रायः ऐसी कविताएं कम हैं, जिनके लिखते समय मैंने रात में चौकीदारों की सजग वाणी या किसी अकेले जाते हुए पथिक के गीत की कोई कड़ी नहीं सुनी।"

महादेवी ने अपने जीवन में समाज-सेवा, अध्ययन-अध्यापन, साहित्य-सृजन का कार्य ही प्रमुखरूप से किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना भी की है—इन संस्थाओं में 'साहित्यकार-संसद' उल्लेखनीय है। अपने मनोनुकूल पथ का चयन कर अपनी पूरी क्षमता एवं गति से उस पर अग्रसर होने की तथा पथ की बाधाओं को चुनौती देकर, उनपर विजय प्राप्त करने की अपूर्व शक्ति उनके व्यक्तित्व में है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व का स्वयं निर्माण किया है, जो प्रभविष्णु एवं अत्यन्त उज्जवल है। संगीतकला, चित्रकला एवं काव्य-कला के बहुरंगी सूत्रों ने उनके जीवन और व्यक्तित्व को ऐसा रूप प्रदान किया है जो अद्वितीय एवं अप्रतिम है।

साहित्य-साधना एवं काव्य-सृजन का प्रारम्भ महादेवो ने केवल आठ वर्ष अल्पायु में ही कर दिया था। इन्होंने प्रारम्भ में ब्रजभाषा में कुछ पद और

मुक्तक लिखे जो समस्या पूर्तियाँ थीं। 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा आपका परिचय खड़ी बोली से हुआ और उन्होंने अपनी प्रथम खड़ी बोली की रचना 'दिया' ग्यारह वर्ष की अवस्था में लिखी थी। इसके अनन्तर आपकी अनेक रचनाएँ 'चाँद' और 'आर्यमहिला' पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं। सन् १९२० में आपने एक खण्ड-काव्य भी लिखा था जो प्रकाशित नहीं हुआ। आपकी साहित्य-साधना निरन्तर चलती रही और सन् १९३० में प्रथम काव्य संग्रह 'नीहार', सन् १९३२ में द्वितीय संकलन 'रश्मि', सन् १९३४ में तृतीय काव्य ग्रन्थ 'नीरजा' और सन् १९३६ में चतुर्थ काव्य संग्रह 'सांध्यगीत' और सन् १९४२ में 'दीप शिखा' प्रकाशित हुआ। प्रथम चार काव्य-संग्रहों–'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', तथा 'साध्यगीत' की १८५ कविताओं का एक वृहद्-ग्रन्थ 'यामा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। लगभग १९४० से आपने कविताओं के साथ साथ गद्य-लेखन भी प्रारम्भ किया। महादेवी ने यथार्थवादी दृष्टिकोण को लेकर अनेक संस्मरणात्मक रेखा-चित्र एवं आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं। आपके इन सजीव एवं सरस रेखाचित्रों तथा साहित्यिक लेखों के संग्रह क्रमशः—'अतीत के चलचित्र' (१९४१), 'शृंखला की कड़ियाँ' (१९४२), 'पथ के साथी' (१९५६), 'क्षणदा' (१९५६) तथा 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' (१९६२) प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत अनेक मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त आपने अनेक ग्रन्थों के अनुवाद एवं सम्पादन भी किये हैं।

महादेवी वर्मा आधुनिक छायावादी एवं रहस्यवादी युग की प्रमुख गीतिकार हैं। महात्मा गौतम बुद्ध की करुणा का प्रभाव महादेवी की रचनाओं पर विपुल मात्रा में पड़ा है। अतः उनके गीतों में करुणा, विषाद, पीड़ा, कसक एवं माधुर्य आदि भावों की प्रचुर अभिव्यंजना हुई है। अपनी माँ द्वारा गीतों (कविता) के संस्कार उन्हें प्राप्त हुए थे। वे स्वयं लिखती हैं—"माँ से पूजा आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रज-भाषा में पदरचना प्रारम्भ की थी..................। माँ से सुनी एक करुण कथा का प्रायः सौ छंदों में वर्णन कर मैंने मानो खण्डकाव्य लिखने की इच्छा भी पूरी करली। बचपन की वह विचित्र कृति कदाचित खोगई है। उसके उपरान्त बाह्य जीवन के दुःखों की ओर मेरा विशेष ध्यान जाने लगा था। पड़ोस की एक विधवा वधू के जीवन से प्रभावित होकर मैंने 'अबला', 'विधवा' आदि शीर्षकों से उस जीवन के जो शब्दचित्र दिये थे, वे उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में भी स्थान पा सके। ....व्यक्तिगत दुःख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा। करुणा बहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।"

महादेवी की कविताओं का प्रथम संग्रह 'नीहार' है। अपनी इस प्रारम्भि कृति के सम्बन्ध मे वे स्वयं लिखती हैं—"इस काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ह कौतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाल अप्राप्य सुनहरी ऊषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।" 'नीहार' की रचनाओं में प्रियतम के प्रति कुतूहल एवं विस्मय का भाव अभिव्यक्त हुआ है। कवयित्री के हृदय में दुःख और पीड़ा का साम्राज्य आच्छादित है और यह पीड़ा प्रियतम की ही देन है। अतः वह उसे वरदान मानकर संजोये हुए हैं। लोग दु:ख से दूर भागते हैं, किन्तु कवयित्री दुःख को स्वीकार कर उसका गुणगान करती है, क्योंकि दुःख जीवन का संबल है। इसी को आलोचकों ने 'दुःखवाद' की संज्ञा दी है। 'नीहार' और 'रश्मि' में कवयित्री के इस 'दुःखवाद' की अभिव्यक्ति प्रणय-वेदना, करुणा आदि दुःख की स्वीकृति के रूप मे मुखरित हुई है। महादेवी की यह वेदना सामान्य वेदना नहीं है जो कष्टदायी होती है—यह प्रणय वेदना तो कवयित्री को मधुर और मधुमय प्रतीत होती है:—

"गयी वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पिड़ा में बोर।"

उसका प्रिय करुणामय है। कभी वह नभ की दीपावलियों से कहती है:—

"करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना।
हे नभ की दीपावलियों!
तुम पलभर को बुझ जाना।"

महादेवी का प्रियतम अज्ञात एवं असीम है। अतः उनका प्रेम लौकिक न होकर आत्मिक एवं आध्यात्मिक प्रेम है। महादेवी माधुर्य भाव से अपने प्रियतम के प्रति अपना आत्मनिवेदन करती हैं। लगभग सभी कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण को स्वामी, सखा, पिता तथा प्रियतम आदि अनेक रूपों में मानकर अपने भावों का प्रकाशन किया है। महादेवी ने भी अपने आराध्य 'करुणामय' (ब्रह्म) को प्रियतम के रूप मे मानकर 'प्रिय' कहकर सम्बोधित किया है। वे सूक्ष्म ब्रह्म की उपासिका हैं। अतः वे पूजा अर्चना के बाह्य उपकरणों को स्वीकार नहीं करती हैं। उनका सारा मधुतम जीवन ही उस असीम का सुन्दर मन्दिर है। उनकी श्वासें नित्य प्रिय का अभिनन्दन करती हैं, लोचन के जलकण पद रज धोते हैं, पुलकित रोम अक्षत है पीड़ा चन्दन है, स्नेहभरा मन दीपक की भांति प्रज्वलित रहता है और दृग-तारक ही कमल-पुष्प हैं तथा हृदय की धड़कन ही धूप बनकर उड़ती रहती है:—

"क्या पूजा क्या अर्चना रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनंदन रे !
पद रज को धोने उमड़े आते लोचन मे जलकरण रे !
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे !
मेरे दृग के तारक से नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे !"

महादेवीजी 'नीरजा' मे एक सफल गीतिकार के रूप में सामने आई हैं। प्रस्तुत सग्रह मे कवयित्री ने प्रकृति के अनेक वैभवशाली चित्र अंकित किये हैं:—

"रूपसि तेरा घन केशपाश
श्यामल श्यामल, कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केशपाश।
× × ×
सौरभ भीना झीना भीना
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल
चल अंचल से झर झर झरते
पथ मे जुगनू के स्वर्णफूल,
दीपक सा देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास।"

'नीरजा' और 'सांध्यगीत' के गीत अत्यन्त प्रौढ़ एव श्रेष्ठ है। 'मुस्काता सकेत भरा नभ, अलि क्या प्रिय आने वाले हैं' एक प्रौढ़ एव उत्कृष्ट रचना है। सूनेपन मे प्रियतम से उसका मूक मिलन हुआ था, जो आज स्वप्न बनकर रह गया है—जहाँ मिटना ही निर्वाण है और नीरव रोदन पहरेदार है:

"पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
उस दिन दूर क्षितिज के उस पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ,
नीरव रोदन था पहरेदार।
कैसे कहती हो सपना है,
अलि ! उस मूक मिलन की बात ?"

भरे हुए अबतक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।"

महात्मा बुद्ध की करुणा और 'दुःखवाद' के दर्शन का महादेवी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। अतः वे सुख से दुःख को अधिक महत्त्व देती हैं। स्वयं उनका यह कथन है—" दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।" इसीलिये कवयित्री को पीड़ा अधिक प्रिय है। अतः वह अमरों का लोक नहीं चाहती है—जिस लोक मे वेदना, जलन और अवसाद नहीं, उनके लिये वह निरर्थक है.—

"ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद
जलना जाना नहीं, नहीं—
जिसने जाना मिटने का स्वाद।
क्या अमरों का लोक मिलेगा।
तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।"

कवयित्री के लिये पीड़ा और प्रियतम दोनों में कोई अंतरभेद नहीं रहगया है। वह पीड़ा को ही सर्वस्व मानकर प्रियतम के मिलन की भी कामना नहीं करती है —

"मिलन का मत नाम लो,
मै विरह मे चिर रहूं।"

अपने प्रथम काव्य संकलन 'नीहार' मे कवयित्री कहती है कि उसके 'करुणामय' को तम के परदे में आना भाता है, अतः नभ की तारावलियों को पल भर के लिए बुझ जाने के हेतु प्रार्थना करती है। किन्तु 'नीरजा' में वह अपनी आत्मा का दीपक प्रज्वलित कर प्रियतम का पथ आलोकित करना चाहती है:—

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग, प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।"

लगता है कवयित्री ने अपनी अनुभूति, कल्पना एवं कला को इन गीतों में

बहुरंगी भावों से संजोया है, जिसका उज्जवल एवं परिष्कृत रूप 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' में देखने को मिलता है। छायावाद काल मे कवियों ने प्रकृति को अनेक रूपों मे ग्रहण कर चित्रित किया है। कहीं प्रकृति सचेतन मानवी के रूप मे प्रस्तुत की गई है और कहीं मानवमन में सुख-दुःखात्मक अनुभूति को व्यक्त करने में वह सहायक हुई है। महादेवी ने प्रकृति को नव चेतना प्रदान की है। प्रकृति कवयित्री के भावों के साथ पूर्व तादात्म्य स्थापित कर प्रियतम के प्रति आत्मनिवेदन करने मे सहायक हुई है। श्रीमती वर्मा की कविताएं अनेक रूपकों से परिपूर्ण हैं— 'रूपसि तेरा घन केशपाश' मे पावस की तथा 'धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी' मे बंसत की रात्रि का सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया गया है। कतिपय गीतों मे कवयित्री ने प्रकृति के साथ अपने जीवन को एकाकार कर दिया है। इस दृष्टि से- 'प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन', 'विरह का जल जात जीवन' तथा 'मैं नीरभरी दुःख की बदली।' आदि उत्कृष्ट रचनाएं हैं:—

(१) "प्रिय ! सांध्य गगन मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुंधला विराग
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया बीत राग,
सुधि भीने स्वप्न रंगीले, घन !"

(२) "विरह का जलजात जीवन
विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रुगिनती रात।"

(३) "मैं नीर भरी दुःख की बदली !
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल मिट आज चली।"

शनै.शनै: महादेवीजी का चिन्तन अधिक गहन एवं प्रौढ़ होता गया है। 'दीपशिखा' के अनेक गीत इस कथन के परिचायक हैं। 'दीपशिखा' में आकर कवयित्री का आत्म विश्वास अत्यन्त दृढ़ होगया है। 'दीपशिखा' के अनेक गीत 'दीप' को 'आत्मा' का प्रतीक मानकर रचे गये हैं। प्रस्तुत संग्रह मे रात्रि के चार यामो की गाथा ५१ गीतों मे लिखी गई है। इसके गीतों मे विश्व के प्रति संवेदन-

वेदना की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। प्रत्येक गीत की पृष्ठभूमि में दर्द भरा भाव छिपा है। कवयित्री की विरह वेदना गीत का रूप ग्रहण कर लेती है—उससे व्याकुल हुई वह मृत्यु की कामना भी करने लगती है। प्राणों के दुःख को शरीर रूपी पिंजर से मुक्त करना चाहती है –

"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो
हो उठी है चंचु छूकर
तीलियाँ भी वेणु सस्वर
बंदिनी स्पंदन बनाने
सिहरता जड़ मौन पिंजर
× × ×
प्रलय घन में आज राका घोल दो।"

छायावादी कवियों में वस्तुओं और जीव-जगत् के प्रति रहस्यात्मक दृष्टिकोण, जिज्ञासा एवं विस्मय का भाव पाया जाता है। छायावादी कवियों की रहस्य दृष्टि ने उन्हें अनेक स्थलों पर रहस्यवादी बना दिया है। महादेवी हिन्दी के छायावादी—रहस्यवादी कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। हिन्दी में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग अँग्रेजी के 'मिस्टीसिज्म' (Mysticism) के पर्याय के रूप में गृहीत हुआ है। हिन्दी साहित्य में साधनात्मक रहस्यवाद ही मिलता है। साधक अथवा सन्तकवि निजी अनुभूतियों को गीतों एवं पदों के माध्यम से अभिव्यक्त करते थे। बौद्ध सिद्धों एवं नाथों के पदों में साधनात्मक रहस्यवाद ही मिलता है। इसी प्रकार कबीर, दादू तथा सुन्दरदास आदि निर्गुणवादी साधक कवि थे। आधुनिक युग के हिन्दी रहस्यवादी काव्य पर अँग्रेजी रहस्यवादी परम्परा एवं कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव पड़ा है। महादेवी के गीतों पर भारतीय रहस्यवादी परम्परा के प्रभाव के अतिरिक्त रवीन्द्र की रहस्यवादी परम्परा की भी अनुगूंज है। डा० प्रभाकर माचवे के शब्दों में—"हिन्दी की आधुनिक कविता में सच्चा रहस्यवादी स्वर हमें 'निराला' और महादेवी वर्मा—इन दो कवियों में ही मिलता है।"

महादेवी की विरहानुभूति अत्यन्त मार्मिक एवं गम्भीर है। उनकी पीड़ा एवं विषाद आध्यात्मिक पीड़ा का पर्याय सा जान पड़ता है। कवयित्री की चिर वियुक्त आत्मा अपने प्रियतम के वियोग से व्याकुल हो कहती है:—

"नहीं अब गाया जाता देव
थकी अँगुली हैं ढीले तार
विश्व वीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार।"

महादेवी की कविताओं में प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होती है। उनकी प्रथम रचना 'दीप' में यह रहस्यवादी बीज अंकुरित हुआ था, जो परवर्ती रचनाओं मे पुष्पित एवं पल्लवित हुआ। अपनी प्रथम रचना मे बाल कवयित्री ने दीपक और वर्ती के माध्यम से मानव जीवन के दुःख रूपी अंधकार को ईश्वर प्रेम रूपी स्नेह के योग से तिरोहित करने की भावना प्रकट की है:—

"धूलि से निर्मित हुआ हैं, यह शरीर ललाम,
और जीवन वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम।
प्रेम का ही तेल भर जो हम बने निःशोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर मे आलोक।"

कवयित्री की विभिन्न रचनाओं मे दीपक के इस रूपक का आदि से अन्त तक निर्वाह हुआ है। उनकी अन्तिम काव्यकृति 'दीपशिखा' तथा अन्य कविताओं के कतिपय उदाहरण देखिये:—

(क) 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल'—'नीरजा'
(ख) 'दीप मेरे जल अकम्पित'—'दीपशिखा'
(ग) यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो'—दीपशिखा'
(घ) 'मोम सा तन घुल चुका
अब दीप सा मन जल चुका है'—'दीपशिखा'

महादेवी की लगभग सभी कविताओं मे रहस्यानुभूति की व्यंजना हुई है। उनकी प्रथम रचना से लेकर अन्तिम काव्य संग्रह 'दीपशिखा' की अंतिम कविता का मे आत्मा-परमात्माअविच्छिन्न, शाश्वत सम्बन्ध अद्वैतवादी भावना के रूप में प्रकट हुआ है। उनकी यह अद्वैत भावना दार्शनिक ज्ञान अथवा तत्व चिन्तन पर आधारित न होकर भावात्मक है जो कि दिव्य रहस्यानुभूति के रूप में प्रकट हुई है। 'नीहार' की प्रथम कविता मे ही दिव्य प्रेम की रहस्यानुभूति प्रिय के साक्षात्कार के रूप में होती है, जो कली और मधुमास के माध्यम से व्यंजित हुई है:—

"कली से कहता था मधुमास,
बता दो मधु मदिरा का मोल
झटक जाता था पागल वात
धूल में तुहिन कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार।"

किन्तु उस दिव्य प्रियतम से केवल एक बार ही साक्षात्कार हुआ और व प्रणय पीड़ा जागृत कर युगों युगों से नहीं आये—

"गये तबसे कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मन मोहक गान।"

विरहानुभूति जन्य व्याकुलता एवं पीड़ा उनकी अतुल निधि है:—

"जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ हैं प्राणों के छाले
मांग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले।"

अज्ञात प्रियतम से उस अलौकिक मिलन की अनुभूति को एक सामान्य स्वप्न कोई न समझले, उस प्रथम मिलन की अनुभूति का बोध प्रकृति के माध्यम से उसे होता रहता है—

"कैसे कहती हो सपना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात।
भरे हुए अबतक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।'

जब कवयित्री का अलौकिक प्रियतम से प्रथम मिलन हुआ था, तब वह यौवन के द्वार में प्रवेश कर रही थी, कि दिव्य प्रियतम की एक चितवन ने वेदना का साम्राज उसे दे दिया—

"इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।"

प्रिय की विरहानुभूति में वह लीन है तभी सहसा मुस्कराता हुआ नभ संकेत देता है और पुनर्मिलन की आशा जागृत होती है—

"मुस्काता संकेत भरा नभ
अलिक्या प्रिय आने वाले हैं

× ×

दिन निशि को, देती निशि दिन को
कनक रजत के मधु प्याले हैं।"

प्रिय-मिलन की अनुभूति की कल्पना अथवा संभावना मात्र, उन प्रतीक्षा के क्षणों को कैसा भावात्मक अनूठा रूप प्रदान कर रोमांचित कर देती है—

"नयन श्रवण मय, श्रवण नयन मय
आज हो रही कैसी उलझन!
रोम रोम में होता री सखि
एक नया उरका सा स्पंदन।"

कवयित्री की यह रहस्यानुभूति प्रारम्भिक मिलन से उदित होकर शनैः शनैः वियोग की तीव्रता के अनेक स्तर पार करती हुई उस समरसता की भाव भूमि को स्पर्श करती है, जहाँ विरह-मिलन में सामञ्जस्य हो जाता है, जहाँ वह साधना को ही सिद्धि और रुदन को ही सुख की गाथा समझती है:—

"खोज ही चिर प्राप्ति का वर
साधना हो सिद्धि सुन्दर,
रुदन में सुख की कथा है
विरह मिलन की प्रथा है
शलभ जलकर दीप बन जाता-
निशा के शेष में
आँसुओं के देश में।"—दीपशिखा

अन्ततोगत्वा कवयित्री उस स्थिति तक पहुँच जाती है जहाँ द्वैत और अद्वैत में एकरूपता हो जाती है, आत्मा और परमात्मा का भेद मिट जाता है—

"क्या पूजा क्या अर्चना
उस असीम का सुन्दर मंदिर
मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी सांसे करती रहती—
नित प्रिय का अभिनन्दन रे।"

'दीपशिखा' के अन्तिम गीत में महादेवी के अन्तर का समन्वयात्मक भाव अभिव्यक्त हुआ है, जहाँ सुख और दुःख, मिलन-वियोग आत्मा, और ब्रह्म समन्वित रूप में दृष्टि गोचर होते हैं। महादेवी जी के शब्दों में—"नीहार के रचना काल में मेरी अनुभूतियाँ वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ पड़ती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली ऊषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के

१२ प्रेमचन्द की औपन्यासिक उपलब्धियाँ

प्रेमचंद हिन्दी कथा साहित्य के युग-प्रवर्तक जन साहित्यकार हैं। अपने युग के जन क्रंदन को उन्होने कान खोलकर सुना था, समाज की दशा को आँख खोलकर देखा था और समय की मांग को भली प्रकार समझ कर युगानुकूल साहित्य प्रस्तुत किया। समाज और साहित्य की धाराएँ सर्वत्र साथ-साथ चलती हैं। किन्तु समाज और साहित्य के जीवन मे कभी-कभी ऐसे स्थल भी उपलब्ध होते हैं, जब कि साहित्य की धारा समाज की धारा से विच्छिन्न हो जाती है। पर यह स्थिति अधिक काल तक नही रह सकती और तब कोई न कोई प्रतिभाशाली साहित्यकार प्रादुर्भूत हो इस अलगाव की स्थिति को तिरोहित कर साहित्य और समाज की धाराओं में एकरूपता लाकर दोनो मे पुनः सम्बन्ध स्थापित कर देता है। प्रेमचंद के आविर्भाव से पूर्व का काल कुछ इसी प्रकार का था। कविता कामिनी शृंगारिकता एवं विलासिता के भावों से बोझिल हो जन जीवन से कटकर अलग हो गई थी। फिर ब्रिटिश शासन काल मे तथा पूंजीपतियों के उत्कर्षकाल मे कविता सकुचित हो मुट्ठी भर लोगो के गुणगान मे लग गई थी। प्रेमचंद ने कतिपय पूंजीपतियो एवं अंग्रेजी राजतत्र का गुणगान न करते हुए उन कोटि-कोटि दलित, पीड़ित एवं शोषित मानवों की मूक वाणी को अपने साहित्य (उपन्यासो और कहानियों) द्वारा मुखरित किया। उन्होने स्वयं अपने जीवन को आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओ की आग मे तपाया था तथा आर्त मानवों के प्रति हार्दिक सम्वेदना प्रकट की। उनके साहित्य मे शोषित और उपेक्षित मानव समाज के प्रति अपार सहानुभूति है।

प्रेमचंद ने साहित्य के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है "साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। ....अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नही है मनोरंजन के सिवा उसका कुछ और भी उद्देश्य है। अब वह केवल नायक नायिका के संयोग वियोग की कहानी नही सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है। ....हम जीवन मे

जो कुछ देखते हैं या जो कुछ हम पर गुजरती है, वही अनुभव और चोटें कल्पना में पहुँच कर साहित्य सृजन की प्रेरणा देती है।" प्रेमचन्द ने तत्कालीन भारतीय समाज की दयनीय दशा को देखा था और समाज की जर्जरावस्था का अनुभव किया था। उन्होंने निजी जीवन में अनेक कष्ट और आघात सहे थे। अपने जीवन में अनेक कटु अनुभव उन्हें प्राप्त हुए थे और इसी ने उन्हें साहित्य सृजन की प्रेरणा दी।

प्रेमचंद ने प्रत्यक्षरूप से देखा था कि भारतीय समाज रूढ़िवादिता, अंध विश्वास, अशिक्षा एवं सामाजिक कुप्रथाओं एवं कुरीतियों का शिकार बना हुआ है। कृषकों, श्रमजीवियों एवं विधवाओं आदि को समाज अनेक शताब्दियों से तिरस्कृत और अपमानित करता चला आ रहा है। छुआछूत और दरिद्रता तथा पाशविकता का समाज में बोलबाला था। प्रेमचन्द ने उन उपेक्षित एवं दीनहीन कृषकों, श्रमिकों, वेश्याओं एवं विधवाओं को अपने साहित्यासन पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में भारतीय समाज का ऐसा सजीव, यथार्थ एवं जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया कि उसने समाज की आँखें खोल दी। उन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों का केवल दिग्दर्शन ही नहीं कराया, वरन् उन्हें दूर करने का मार्ग भी दिखलाया तथा समाधान भी प्रस्तुत किया। मेरे विचार से प्रेमचन्द के उपन्यासों एवं कहानियों का उद्देश्य हमारे समाज को अंधकार एवं विषमताओं के गर्त से निकालकर प्रकाशमय एवं उन्नति के पथ पर अग्रसर करना था। उनके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का यही तात्पर्य प्रतीत होता है। वे भारत के जन जीवन के कथाकार हैं और अपने साहित्य द्वारा उन्होंने अपने युग को वाणी प्रदान की।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों द्वारा हिन्दी कथा साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया। उनके मतानुसार साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र नहीं था, अपितु समाज के लिए उपादेय एवं कल्याणकारी सिद्ध होना था। उन्होंने व्यक्ति और समाज की समस्याओं का गहन अध्ययन किया था और उसी का चित्रण अपने कथा साहित्य में विविध प्रकार से किया। उनकी कृतियों में विचारों की नवीनता है तथा दृष्टि में व्यापकता है। कथा साहित्य को रूढ़िवादी परंपरा से निकालकर, दीनदुखी मानवों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर अपनी कला को उन्होंने सार्थक किया। प्रेमचंद की सामाजिक जीवन दर्शन में आस्था थी। उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक सभी प्रकार के शोषण का विरोध किया तथा साहित्य में नवीन एवं स्वस्थ्य परंपराओं की स्थापना की। निश्चय ही उन्होंने चरित्र चित्रण और भाषा शैली की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य को नवजीवन एवं नई दिशा प्रदान की। मानव चरित्र विश्लेषण उनके उपन्यासों का मूल तत्व है। उपन्यास शीर्षक अपने एक निबन्ध में उन्होंने लिखा है - "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का

चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यासों का मूल तत्व है।" इसीलिये प्रेमचद के पात्र गतिशील हैं, उनमें सजीवता एवं प्रभविष्णुता है।

सन् १६०४ में प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास 'प्रेमा' प्रकाशित हुआ था तथा सन् १६३६ में अन्तिम उपन्यास 'गोदान' प्रकाशित हुआ था। 'प्रेमा' से लेकर 'गोदान' तक प्रेमचन्द के उपन्यासों का अध्ययन करने पर विदित होता है कि उनका भारतीय समाज का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत एवं गहन था। तत्कालीन समाज की लगभग सभी समस्याओं का चित्रण उन्होंने अपने कथा साहित्य में किया है। 'प्रेमा' प्रेमचन्द के उर्दू "हम खुरमा व हम कबाब' का हिन्दी अनुवाद है। इस लघु उपन्यास में लेखक ने विधवा की समस्या को उठाया है और विधवा विवाह के रूप में उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

सन् १६१४ में 'सेवा सदन' उपन्यास प्रकाशित हुआ। वास्तव में 'सेवा सदन' की रचना के साथ ही प्रेमचद के मौलिक हिन्दी उपन्यासों का श्रीगणेश हुआ। प्रस्तुत उपन्यास मे वेश्याओं की समस्या के अतिरिक्त मध्यवर्ग की दैनिक आर्थिक विषमताओं का चित्रण किया गया है। दहेज की कुप्रथा से उत्पन्न समस्या और उसका दुष्परिणाम भी मार्मिक रूप से दरसाया गया है। 'प्रतिज्ञा' में लेखक ने विधवाओं की समस्या को उठाया है। प्रेमचद की साहित्यिक दृष्टि की पैठ पर्याप्त गहरी है यह समाज के आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक आदि विभिन्न रूपों तक गई है। 'गबन' मे लेखक ने व्यक्ति की समस्या को प्रमुखता दी है। रामनाथ मध्यवर्ग का एक साधारण व्यक्ति है, उसका मिथ्या प्रदर्शन और जालपा का आभूषण प्रेम, उसे मानवीय दुर्बलताओं एवं विषमताओं का शिकार बनाता है। इस उपन्यास मे लेखक यह भी बतलाता है कि विषम परिस्थितियों मे पड़कर मानव कैसे कैसे कृत्य करता है।

प्रेमचन्द ने अपने 'कर्मभूमि' उपन्यास मे तत्कालीन राजनैतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। गाँधीजी की विचारधारा तथा उनके सत्याग्रह आन्दोलन से प्रेमचन्द के अनेक उपन्यास प्रभावित हैं। जमींदार, अधिकारी वर्ग और महाजन द्वारा कृषक वर्ग का शोषण हो रहा था। बेदखली, बेगार, आदि के द्वारा पूँजीवादी एवं सामन्तवादी शक्तियाँ श्रमिकों एवं कृषकों पर अनेक अत्याचार कर रही थीं। 'रंगभूमि' मे लेखक ने दरसाया है कि औद्योगीकरण के विकास के नाम पर कृषकों की भूमि उद्योग धन्धों के लिए छीनी जा रही थी। औद्योगीकरण की इस नृशंसता का 'रंगभूमि' मे दिग्दर्शन कराया गया है। सन् १६२१ मे गाँधीजी का सत्याग्रह आन्दोलन देश मे छिड़ गया था। 'रंगभूमि' में [illegible] गाँधीवादी भावना का समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने

मैमनस्य की दूरी को सुलझाने का प्रयास किया है। 'कायाकल्प' के
सामाजिक समस्याओं को लेकर प्रेमचन्द ने 'निर्मला' और 'प्रतिज्ञा' की र
ना किये। 'निर्मला' में अधिक अवस्था में विवाह करने का दुष्परिणा
गया है और 'प्रतिज्ञा' में विधवा-समस्या को लिया है। 'रंगभूमि' में
की जनता में उत्पन्न होने वाली राजनैतिक चेतना को भी प्रकट कि
के अत्याचार और कृषक वर्ग के शोषण की झाँकी प्रस्तुत करते हुए ये
रियों के दांपत्य एवं कीर्तिपूर्ण दृश्यों की झांकी भी प्रस्तुत की है।

'प्रेमाश्रम' का रचना जमींदार और किसान की समस्याओं को लेकर हु
स के अंतिम अंश में इस समस्या का समाधान भी लेखक ने प्रस्तुत किय
द ने देखा था कि अशिक्षित, अकिंचन एवं निर्धन कृषकों का क्रूरतापूर्ण
जा रहा है। अतः उनके हृदय में शोषित, पीड़ित और उपेक्षित मानव
गहरी सहानुभूति थी तथा शोषक वर्ग के प्रति क्षोभ का भाव था। धीरे
के शोषित वर्ग में चेतना का उन्मेष हो रहा था और वे दमनकारी श
टकर सामना करने के लिये उद्यत हो रहे थे। प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि'
म' उपन्यास में इसी विषय का चित्रण किया है। विचारों से वे समाज
र उन्होंने मानव समता, मानव एकता तथा मानव उत्कर्ष के लिए साहित्
की। जन जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाले वे सच्चे अर्थों में जन साहि
। वे जीवन-मृत्यु के संघर्ष में रत दलित मानवता का उत्कर्ष करने वाले
क साहित्यकार थे।

वैसे तो प्रेमचन्द ने अपने सभी उपन्यासों में भारतीय समाज का चि
चित्र प्रस्तुत किया है। किन्तु 'गोदान' में यह चित्र मार्मिक रूप से उ
मने आया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने ग्रामीण जीवन सम्बन्धी प्र
यों को उठाया है। भारतीय ग्रामों की दोषपूर्ण अर्थव्यवस्था के का
का शोषण होता है, तो दूसरी ओर वह शोषक वर्ग भी है जो उन कृषकों
के बल पर ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करता है। इन दोनों वर्गों की या
'गोदान' में प्रस्तुत की गई है। भारतीय जीवन का विश्लेषण भी लेखक
है। स्वच्छन्द प्रेम का खोखलापन भी प्रकट किया है, तो प्राचीन भारत
तथा अर्वाचीन पाश्चात्य आदर्शों से प्रभावित भारतीयों के जीवन
मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द भारतीय नारी को सदैव प्र
साथ सहयोग करने वाली, जीवन संघर्ष में रत, आडम्बर विहीन, पतिपराय
के रूप में देखना चाहते थे। 'गोदान' उपन्यास में श्रीमती धनिया अपने प
... भारतीय नारी की भांति निःस्पृह रूप से पति से

में रत रहती है। वह लेखक के आदर्श नारी का रूप कही जा सकती है, स्वच्छंद प्रेम के रंग में रंगी हुई, आधुनिका मालती नही। लेखक का विश्वास है कि सेवा, तप, त्याग और सच्चे प्रेम द्वारा जीवन में कठिन से कठिन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। डा० मेहता का तप, त्याग और सेवाभावी जीवन इसका उदाहरण है। लगता है आज भी हमारे समाज को डा० मेहता जैसे परोपकारी एव समाजसुधारक व्यक्तियों की आवश्यकता है। उन्होंने समाजसुधारक दृष्टिकोण अपने उपन्यासों में भी रखा है।

प्रेमचन्द ने मानव चरित्र का विश्लेषण पात्रों के अन्तस मे पैठकर किया है। उनके पात्रों की संख्या बहुत है। किन्तु उन्होंने किसान, जमींदार, महाजन, शिक्षक, क्लर्क, डाक्टर, पुलिस कर्मचारी एवं वकील आदि पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। धन लौलुप, भौतिकता के पुजारियो को अपनी प्रारम्भिक सफलता पर गर्व होता है। किन्तु लेखक ने इन भौतिक, अचिर साधनो की नश्वरता सिद्ध करते हुए, उनके गर्व का खर्व करवाया है। 'गोदान' में मिस्टर खन्ना रिश्वत और कमीशन द्वारा अपने भौतिक सुखों मे अभिवृद्धि करते हैं, किन्तु उन्हें सच्ची मानसिक शान्ति उपलब्ध नही होती। रायसाहब दीन कृषकों का खूब शोषण करते हैं और उनपर मनमाने अत्याचार करते हैं, किन्तु उनका पारिवारिक जीवन कष्टमय है। लेखक की शोषक वर्ग के प्रति घृणा की भावना इन दोनो पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। दूसरी ओर होरी, गोबर, हीरा, हरखू चमार, धनिया, रूपा, झुनिया, सीलिया आदि पात्र शोषित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं। होरी सीधा [illegible], सरल भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि है जो हमारी सम्वेदना का पात्र है। [illegible]क वर्ग के अन्तर्गत खन्ना, रायसाहब, खुर्शेद और नोखेराम आदि आते हैं।

प्रेमचन्द का काल दो विभिन्न संस्कृतियों का संक्रान्तिकाल था। भारतीय [illegible] पाश्चात्य संस्कृतियो मे संघर्ष चल रहा था। प्रेमचन्द भारतीय संस्कृति के पोषक [illegible] वे भारतीय समाज की उन्नति के लिए पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण [illegible]न नहीं समझते थे। विशेषरूप से भारतीय नारियों का पाश्चात्य नारियों का [illegible]ानुसरण उन्हें रुचिकर नहीं था। यद्यपि वे स्त्री समाज की हृदय से उन्नति [illegible]ते थे तथा उन्हें पुरुषों के समान बराबर अधिकार दिये जाने के प्रबल समर्थक थे। [illegible]ु वे भारतीय नारी को पश्चिम की नारी के समान उच्छृंखल रूप में नहीं [illegible]ना चाहते थे। पाश्चात्य संस्कृति में जो भी अच्छाईयां हैं उन्हें ग्रहण करके तथा [illegible]इयों को त्यागने की बात उन्होंने सांकेतिक रूप मे अपनी रचनाओं में प्रकट की [illegible] 'गोदान' उपन्यास में आधुनिका (फारवर्ड) मालती को श्रीमती मालती के रूप [illegible]चित्रित कर उन्होंने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से बार-बार भारतीय समाज के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत कर देशवासियों के हृदय के प्रसुप्त भावों को जागृत करने का अथक प्रयत्न किया है। वास्तव में उन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा देश की गंभीर समस्याओं पर प्रकाश डालने का भरसक प्रयत्न किया है तथा उनके समाधान एवं सुधार के हेतु सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं। अपने प्रत्येक उपन्यास में उन्होंने किसी न किसी रूप में कोई न कोई सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक आदि प्रश्न उठाये हैं और अपने ढंग से उनके निराकरण का मार्ग भी दरसाया है।

कथा के स्वरूप और पात्रों का चरित्र निर्माण करने में वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। समाज के सभी वर्गों के आचार-विचार एवं व्यवहार का यथार्थ एवं सजीव चित्र उनकी कृतियों में उपलब्ध होता है। यदि किसी को हमारे समाज की तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक दशा का चित्र देखना हो तो उसे प्रेमचन्द के कथा साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। जहाँ एक ओर उनके उपन्यासों में स्वतंत्रता से पूर्व की देश की दशा का यथार्थ चित्र देखने को मिलता है तो दूसरी ओर देश की स्वतंत्रता के लिये किये गये संघर्ष एवं सांस्कृतिक जागरण की झांकी भी देखने को मिलती है। वे भारतीय समाज के जीवन में महान परिवर्तन लाना चाहते थे, किन्तु उनका मार्ग शान्तिपूर्ण एवं अहिंसात्मक था। यद्यपि वे रूसी लेखक गोर्की से प्रभावित थे, किन्तु रक्त क्रान्ति के वे समर्थक नहीं थे। वे स्वयं अभावों में जन्मे, अभावों में पले थे, अतः अभावग्रस्त मानवों के प्रति उनके हृदय में गहरी संवेदना एवं अगाध प्रेम था।

प्रेमचन्द को कुछ लोग प्रचारक और उपदेशक कहते हैं। यद्यपि प्रारम्भ में वे आदर्शवादी एवं सुधारवादी दृष्टिकोण को लेकर चले थे, किन्तु उत्तरोत्तर मानवीय संवेदना से परिपूर्ण उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित होता गया। उनके कथा साहित्य में निम्नवर्ग एवं मध्यवर्ग के प्रति अपार सहानुभूति है। देश की ऐसी कोई समस्या नहीं थी जो प्रेमचन्द से अछूती रही हो। वे युग द्रष्टा होने के साथ ही भविष्य द्रष्टा भी थे। हिन्दी में सामाजिक उपन्यासों का प्रवर्तन उन्हीं ने किया था। 'सेवा सदन' से लेकर 'गोदान' तक की उनकी औपन्यासिक उपलब्धियाँ महान हैं। वे हिन्दी के उपन्यास सम्राट तो माने ही जाते हैं, साथ ही विश्व के श्रेष्ठतम उपन्यासकारों की पंक्ति में स्थान पाने के भी अधिकारी हैं।

---

१३ प्रेमचन्द की कहानी कला

आधुनिक गद्य साहित्य की विविध विधाओं में कथा-साहित्य का अपना विशेष महत्व है। कहानी और उपन्यास दोनों ही कथा-साहित्य के अङ्ग हैं, किन्तु कला एवं टैक्नीक (Technique) की दृष्टि से एक दूसरे से पृथक है। हिन्दी के इने गिने ही साहित्यकार ऐसे हैं जिन्होंने दोनों की कलाओं पर समान अधिकार प्राप्त कर समान रूप से सफलता एवं कुशलता प्राप्त की है। स्वर्गीय प्रेमचन्द ऐसे साहित्यकारों में अग्रगण्य हैं। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द की लेखनी ने अद्भुत कौशल दरसाया है एवं अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। उपन्यासकार के रूप में उन्होंने हिन्दी का गौरव बढ़ाया एवं उपन्यास-सम्राट के शीर्ष तथा गौरवमय पद पर प्रतिष्ठित हुए। साथ ही कहानीकार के रूप मे भी उन्होंने विशेष कला एवं प्रतिभा का चमत्कार प्रदर्शित किया है। कहानी लेखन कला में पूर्ण पटु एवं पारंगत होने के कारण ही वे हिन्दी जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय हुए।

प्रेमचंद का कथा साहित्य अत्यन्त विस्तृत एवं विशाल है। उनकी कहानियों के क्षेत्र एवं काल की व्यापकता में पूरा एक युग समाहित है। उन्होंने लगभग तीन दशाब्दियों के काल में लगभग साढ़े तीन सौ कहानियों का सृजन किया है। उनकी कहानियाँ प्राचीन भावधारा से अभिसिंचित तथा नवीन पाश्चात्य एवं भारतीय चेतना से अनुप्राणित हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में प्राचीन एवं नूतन, भारतीय एवं पाश्चात्य भाव धाराओं का सुन्दर समन्वय अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है।

रचना-काल तथा क्रमिक विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द के सम्पूर्ण कहानी साहित्य को हम निम्नांकित तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं :—

(१) सन् १९१६ से १९२० तक —प्रथम काल।
(२) सन् १९२१ से १९३० तक —द्वितीय काल।
(३) सन् १९३१ से १९३६ तक —तृतीय काल।

यदि हम उपर्युक्त काल क्रम की दृष्टि से प्रेमचन्द के समूचे कहानी-सा

का अध्ययन करें तो भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों ही रूपों में उनकी कहानी कला का क्रमशः विकास होता हुआ प्रतीत होता है। उत्तरोत्तर उनकी कहानी कला तकनीकी एवं शिल्प की दृष्टि से विकसित होती गई है।

प्रथम काल —

प्रथम काल के अन्तर्गत उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ आती हैं। 'सप्त-सरोज' से लेकर 'नव निधि' तक की कहानियाँ इस काल के अन्तर्गत आती हैं। 'प्रेम-पचीसी' की कहानियाँ भी इसी काल की सीमा में हैं। प्रेमचन्द की कहानी कला का प्रारम्भिक रूप इस काल की कहानियों में दृष्टिगोचर होता है। इस काल की लगभग सभी कहानियों में भावों एवं विचारों की स्वतन्त्रता के साथ एक ही प्रकार की शिल्प विधि मिलती है। ये कहानियाँ कला की दृष्टि से इतिवृत्तात्मक तथा भावों की दृष्टि से आदर्शवादी हैं। उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ वर्णनात्मक शैली में लिखी गई हैं, जो पात्रों के चरित्रों की व्याख्या अधिक प्रस्तुत करती हैं। कला की दृष्टि से इन कहानियों का स्तर समान है। वास्तव में प्रेमचन्द तत्कालीन विभिन्न समस्याओं को अपनी लम्बी कहानियों के माध्यम से प्रेषित करना चाहते हैं।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में 'पंच परमेश्वर', 'नमक का दरोगा', 'रानी सारन्धा', 'बड़े घर की बेटी' तथा 'अमावस्या' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। कहानियों के कथानक पर्याप्त लम्बे हैं। उनकी कुछ कहानियों के इतिवृत्त कहीं कहीं दो कथाओं को लेकर भी चले हैं। शिल्प-विधि की दृष्टि से इन कहानियों के कथानक प्रारम्भ होकर आगे बढ़ते हैं कि बीच में ही ऐसी कोई घटना घटित होती है कि कथानक दो विरोधी धाराओं में बट जाता है, किन्तु फिर सहसा कोई ऐसी परिस्थिति आ उपस्थित होती है कि मनोभावों के सूत्र पुनः जुड़कर पूर्ववतः हो जाते हैं। 'पंच परमेश्वर' तथा 'बड़े घर की बेटी' आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। उनकी प्रारम्भिक कहानियों के स्त्री पात्र यथार्थवादी सामाजिक मर्यादाओं में बंधे हुए हैं, किन्तु वे स्वाभिमानी भावना से अनुप्राणित आदर्शोन्मुख हैं। 'पंच परमेश्वर' की खाला तथा 'बड़े घर की बेटी' की आनन्दी आदि इसी प्रकार के स्त्रीपात्र हैं।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों के कुछ प्रमुख पात्र (नायक) विरोधी शक्तियों के बीच अपने आदर्श एवं सत्य पथ पर दृढ़ रहते हैं। अपनी इस सत्य निष्ठा एवं आदर्शवादिता के कारण वे कभी दुष्परिणाम भोगते हैं ('सज्जनता का दण्ड') तो कभी उसका पुरस्कार भी प्राप्त करते हैं—'नमक का दरोगा।'

द्वितीय काल—

प्रेमचन्द की इस काल की कहानियों में आकार और प्रकार दोनों ही रूपों में शनैः शनैः परिवर्तन हुआ है। प्रेमचन्द ने कहानी के सम्बन्ध में अपने उद्देश्य को

स्पष्ट करते हुए लिखा है—"ऐसी कहानी जिसमें जीवन के किसी अंग पर प्रकाश न पड़ता हो, जो मनुष्य में सद्भावनाओं को दृढ़ न करे या जो मनुष्य में कुतूहल का भाव न जाग्रत करे, कहानी नहीं है।" प्रेमचन्द की इस काल की कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र न होकर किसी न किसी सामाजिक एवं दर्शनिक तत्व की विवेचना करना प्रतीत होता है। उनकी प्रारम्भिक काल की कहानियों में आदर्शवाद की प्रधानता थी, किन्तु द्वितीय काल में आकर उनकी कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की दिशा में अग्रसर हुई हैं। तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का तथा विशेष रूप से गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव इस काल की कहानियों पर स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। इस काल की प्रमुख कहानियाँ 'सत्याग्रह', 'ब्रह्म का स्वांग' तथा 'महातीर्थ' आदि हैं।

प्रेमचन्द के मतानुसार, "मानव जीवन को अन्धकार के गर्त से निकाल कर प्रकाशमय पथ पर लेजाना ही साहित्यकार का उद्देश्य होना चाहिए।" उनके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में इसी उद्देश्य की पूर्ति हुई है। वे प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में विचरते हुए पाठक को नवीन जाग्रत दशा में ले जाना चाहते हैं। प्रेमचन्द के कथा-साहित्य की सृष्टि का उद्देश्य वर्तमान समाज व्यवस्था की मूल बुराइयों को उभारकर, पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर उन्हें सुधार की ओर अग्रसर करना था। उन्होंने इस बात का अनुभव किया था कि तत्कालीन श्रमजीवियों एवं कृषकों का जीवन दुःखमय है। समाज में धनिकों एवं पूंजीपतियों का बोलबाला है और उनके द्वारा गरीबों का शोषण हो रहा है। समाज में व्याप्त अन्ध-विश्वास, कूप मण्डूकता, रूढ़िवादिता आदि अनेक कुरीतियाँ समाज को खोखला बना रहे हैं तथा जनता गुमराह हो अन्धकार के गर्त में गिर रही है। अतः उन्होंने पूंजीपतियों तथा राजा-महाराजाओं को अपना आराध्य न बनाकर देश की शोषित पीड़ित जनता को अपने साहित्यासन पर समासीन कर उनके प्रति गहरी संवेदना दरसाई। वे वर्तमान युग के जनवादी यथार्थ कलाकार थे।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक काल की कहानियों की अपेक्षा विकासकाल की कहानियाँ रचना-शिल्प की दृष्टि से भिन्न हैं। कहानी के रूप विधान में भी परिवर्तन हुआ है। उनकी कहानियों का प्रारम्भ परिचयात्मक शैली में होता है, उसके पश्चात समस्या का प्रवेश किया जाता है, फिर द्वन्द्व उत्पन्न होता है और कहानी चरम सीमा पर पहुंच कर उपसंहार में समाप्त हो जाती है। यह प्रेमचन्द की अपनी विशिष्ट शैली है। 'शतरंज', 'बूढ़ी काकी' तथा 'आत्माराम' आदि इस काल की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

अधिक देर में न पड़कर वे सामान्यतः अपने विचारों को अभिधा शक्ति के द्वारा व्यक्त करते हैं। उनकी कहानियों की भाषा उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों से युक्त मुहावरेदार है। उन्होंने अपनी कहानियों में अनेक शैलियों का प्रयोग किया है। प्रेमचन्द ने बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी कहानियां सफलतापूर्वक लिखी हैं। घटना-प्रधान तथा वर्णनात्मक शैली में उन्होंने अनेक कहानियां लिखी हैं, जो घटना दृश्य एवं कथोप-कथन प्रधान कहानियां भी उन्होंने लिखी हैं। हां उनकी कहानियों में हास्य और व्यंग का पुट अधिक मात्रा में नहीं मिलता है, इसका कारण हो सकता है उनकी आदर्शवादिता की प्रणाली।

प्रेमचंद जन-साहित्यकार थे। अतः उनकी कहानियों का मूल विषय निम्न एवं मध्य वर्ग की विविध सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याओं से सम्बद्ध है। वे मानवता के सच्चे उपासक थे। वे अपनी वाणी को अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पहुंचाना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इस बात का भी पूरा ध्यान रखा है, इसीलिए उनकी अधिकतर कहानियों की भाषा इतनी सरल है कि अशिक्षित व्यक्ति भी दूसरे से पढ़वाकर उनकी कहानियों के मर्म को समझ सकता है। प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम कथाकार हैं जिनकी अनेक कहानियों एवं उपन्यासों के अनुवाद मराठी, बंगला, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी तथा रूसी आदि अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में हुए हैं। आरम्भ में हमने बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं के रूपान्तर हिन्दी में किये थे, अतएव इस ऋण को चुकाने वालों में प्रेमचन्द अग्रगण्य हैं। प्रेमचन्द हिन्दी के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त साहित्यकार हैं। उन्होंने हिन्दी का गौरव बढ़ाया है।

प्रेमचन्द हिन्दी के यशस्वी कथाकार हैं, जिनकी कहानियों में यथार्थ एवं आदर्श, समाज सुधार तथा लोकमंगल की भावना का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। उनकी कहानियों में भारतीय एवं पाश्चात्य, प्राचीन एवं आधुनिक कहानी-कला का मणि-कांचन संयोग हुआ है। उनकी कहानी कला का स्वतन्त्र एवं स्वाभाविक रूप से विकास हुआ है तथा वे मौलिकता के धनी हैं। निःसन्देह वे हिन्दी के महान कलाकार हैं। उनकी कहानियां हिन्दी साहित्य को अमूल्य एवं अक्षुण्ण निधि हैं।

१४ 'उसने कहा था' एक समीक्षा

साहित्य क्षेत्र में मात्रा का नहीं गुण का सम्मान होता है। किसी साहित्यकार ने कितना लिखा है? यह बात अधिक महत्व नहीं रखती, वरन कैसा लिखा है? यह बात सबसे अधिक महत्व की है। स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने हिन्दी में केवल तीन कहानियाँ लिखी हैं —(१) 'सुखमय जीवन' (२) 'बुद्धू का काँटा' और (३) 'उसने कहा था।' किन्तु तीन कहानियाँ मात्र लिखकर ही गुलेरी जी हिन्दी कथा साहित्य में अमर हो गये। वैसे तो गुलेरी जी ने निबन्ध लेखन में भी अपनी लेखनी का चमत्कार दिखलाया है। परन्तु उन्होंने 'उसने कहा था' कहानी के लेखक के रूप में इतना यशार्जन किया है, जितना अन्य अनेक कहानीकार सैकड़ों कहानियाँ लिखकर भी प्राप्त नहीं कर पाये। कहना नहीं होगा कि यदि गुलेरीजी ने उक्त तीन कहानियाँ न लिखकर केवल अन्तिम एक कहानी 'उसने कहा था' मात्र लिखी होती तो भी वे इस कहानी के बल पर ही हिन्दी के सर्वश्रेष्ट कहानीकारों में गिने जाते। निःसन्देह आज भी 'उसने कहा था' हिन्दी कथा साहित्य में अपने ढंग की एक विशिष्ट कहानी है। गुलेरीजी ने 'उसने कहा था' कहानी सन् १९१५ में लिखी थी, जब की हिन्दी कहानियों का शैशव काल था तब उस कहानी की कला और वैशिष्ठ को देखकर पाठक चकित हुए बिना नहीं रहता। 'उसने कहा था' एक घटनापूर्ण दुःखान्त कहानी है, जिसमें आदर्शवाद और यथार्थवाद का सुन्दर समन्वय किया गया है। क्या कथानक, क्या पात्र और चरित्र चित्रण, क्या कथोपकथन, क्या देशकाल, क्या उद्देश्य और क्या भाषा शैली सभी दृष्टियों से यह एक अत्यन्त श्रेष्ठ और सफल कहानी है।

'उसने कहा था' कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है कथानक की रोचकता एवं सजीवता। लेखक ने कथानक द्वारा ऐसे सजीव वातावरण की सृष्टि की है कि पाठक अनजाने में ही कथा वस्तु के प्रवाह में बह कर अपने आपको आत्म विस्मृत कर देता है। पाठक कहानी के पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

प्राप्ति न है इसी कारण को आत्मोत्सर्ग करते हैं, जब कि लहना उसके प्राण की पूर्ति कर आत्मा की तृप्ति में निर्लिप्त हो उस दशा को प्राप्त हो जाता है। प्रस्तुत कहानी में एक एक क्षण का इतना स्वाभाविक एवं सजीव चित्रण किया गया है कि प्रत्येक चित्र अपने सजीव रूप में नेत्रों के सामने आ खड़ा होता है। कहानी के पात्र बोलते हैं, मुस्कराते बोलते हैं और बोलती है मानव की अतृप्त आत्मा।

'उसने कहा था' कहानी का कथानक प्रथम विश्व महायुद्ध से सम्बद्ध है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है—पंजाब के प्रसिद्ध नगर अमृतसर में एक चौक की किसी दुकान पर एक पंजाबी बालक और एक बालिका अनायास ही मिलते हैं। बहुधा वे दोनों में बातचीत होती है, परिचय होता है और शनैः शनैः वह परिचय स्नेह का रूप ग्रहण कर लेता है। सहसा एक दिन बालक बालिका की सगाई (कुड़माई) हो जाने की बात को सुनकर निराश हो जाता है और उसे आघात सा लगता है। फिर दोनों इस संसार रूपी सागर में दो तिरोहित तिनकों की भाँति विलग दिशाओं में बहने लगते हैं। काल की कठोरता में दोनों एक दूसरे को भुला बैठते हैं। बालक (लहनासिंह) एक सिख रायफल्स में जमादार हो जाता है और वह बालिका सूबेदार (हजारा सिंह) की धर्मपत्नी बन जाती है। इसी बीच प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो जाता है। भारत की पलटनें (सेनाएँ) लाम पर (युद्ध में) भेजी जाती हैं। लहनासिंह और हजारासिंह दोनों एक ही पलटन में हैं। घटनाचक्र के वशीभूत हो लहनासिंह एक बार फिर अपनी प्रेयसी से मिलता है, किन्तु प्रेयसी के रूप में नहीं, सूबेदारनी के रूप में। यहाँ लेखक ने दोनों का मिलन कितने शिष्ट एवं सात्विक धरातल पर कराया है, जिसमें तनिक भी अशिष्टता, आवेश, उद्वेग एवं उच्छृंखलता नहीं है। प्रेयसी (सूबेदारनी) अपने प्रथम मिलन का स्मरण दिलाती है और आँचल पसारकर अपने एक मात्र पुत्र तथा पति के प्राणरक्षा की भिक्षा माँगती है। लहना सिंह धैर्य की प्रतिमूर्ति सा मौन रह कर मन ही मन म दृढ़ संकल्प सा करता है और अपनी प्रेयसी की अतीत स्मृति में डूबता उतरता मृत्यु के ज्वलन्त पथ पर प्रस्थान करता है। युद्ध में वह अपना सर्वस्व अर्पण कर प्राणपण से अपनी प्रेयसी के पति (हजारासिंह) और पुत्र (बोधासिंह) की प्राण रक्षा करता है और अन्त में सम्पूर्ण व्यथा को अपने हृदय में छिपाये उस लोक की यात्रा के लिए प्रस्थान करता है जहाँ से लौटकर कोई भी नहीं आता।

प्रस्तुत कहानी के उपर्युक्त कथानक को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) लहनासिंह के जीवन का बाल्यकाल का वह भाग जब कि वह अपने मामा के अमृतसर में रहता था और एक बालिका से उसकी भेंट होती है। (२) ... की युवावस्था का वह काल है जब कि वह सिख रायफल में जमादार है

और छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी के लिए अपने घर आता है। सूबेदार की चिट्ठी मिलने पर हजारासिंह के घर आता है और सहसा वहाँ सूबेदारनी के रूप में प्रेयसी से भेंट करता है। (३) कहानी का वह भाग है जब कि लहनासिंह फ्रांस-बेल्जियम की युद्ध भूमि में भेष बदल कर आने वाले जर्मन के षडयंत्र से सूबेदार और बोधासिंह के प्राणों की रक्षा करता है। सूबेदार (हजारासिंह) और बोधासिंह को घायलों वाली गाड़ी में भेजकर प्रेयसी की स्मृति में डूबता उतराता अचेतावस्था में ही कल्पना की स्थिति में प्राणों को त्याग देता है। लेखक ने कथानक का क्रम इस प्रकार से रखा है कि निरन्तर पाठक का कुतूहल बना रहता है और अन्त में जाकर कहानी का रहस्योद्घाटन होता है। कहानी का संकेतात्मक शीर्षक 'उसने कहा था' पाठक के मन में प्रश्नों की झड़ी लगा देता है— किसने कहा था? क्या कहा था? और क्यों कहा था? पर अन्त में शीर्षक का रहस्य खुलता है और पाठक की जिज्ञासा का शमन होता है। कहानी के दुखद अवसान के साथ पाठक भी थोड़ी देर के लिए अवसाद में डूब जाता है और एक करुण भावना हृदय पर छाजाती है। कहानी के नायक के प्रति हमारी करुणा एवं संवेदना उमड़ पड़ती है। प्रस्तुत कहानी के कथानक का सगठन अनूठा है। कहानी को पढ़ने पर पाठक का यह विश्वास दृढ़ होता है कि सच्चा प्रेम वह है जो कि मनुष्य को कर्त्तव्य मार्ग पर अग्रसर करता है, उसे अकर्मण्य नहीं बनाता और उत्सर्ग करने की प्रेरणा देता है। लेखक ने लहनासिंह के चरित्र में यही आदर्श मूर्तिमान किया है।

इस कहानी के पात्रों की सृष्टि करने में लेखक ने स्वाभाविकता, वास्तविकता एवं सजीवता को पूर्ण रूप से बनाये रखा है। प्रत्येक पात्र का विकास सहज रूप से हुआ है। लगता है पात्र अपनी कहानी स्वयं कहते हैं और लेखक को अपनी ओर से कुछ नहीं कहना पड़ता है। लेखक ने पात्रों को घटनाचक्र में डालकर उनका चरित्र प्रस्तुत किया है। अतः पात्रों का चरित्र-विकास अत्यन्त स्वाभाविक रूप से हुआ है। घटनाचक्र में पड़कर जो चरित्र जैसा बन गया है, वह उसी रूप में हमारे सामने आता है। लेखक ने किसी भी पात्र को आदर्श या पतित बनाने की चेष्टा नहीं की है। लहनासिंह तो अपने चरित्र की सजीवता एवं विलक्षणता के कारण अमर पात्र बन गया है। वह कहानी का प्रधान पात्र एवं नायक है, उसका चरित्र सबसे अधिक पुष्ट एवं प्रभावशाली है। वह एक निस्वार्थ प्रेमी, वीर, साहसी, कर्त्तव्य निष्ठ और प्रतिउत्पन्नमति वाला, बुद्धिमान एवं कार्यकुशल व्यक्ति है। उत्सर्ग की भावना उसमें कूट कूट कर भरी है। वह अपने परिवार के प्रति भी स्नेहभाव से परिपूर्ण है। इसी कारण अपने घर के आगन में, अपने हाथ से लगाये हुए आम के पेड़ की शीतल छाया में, भाई कीरतसिंह की गोद में सिर रखने की मधुर कल्पना उस अचेतावस्था में उसे शान्तिपूर्वक प्राण त्याग ने में योगदान देती है।

प्रस्तुत कहानी का दूसरा प्रमुख चरित्र है सूबेदारनी का, वही इस कहानी की दा है उसके बचपन का रूप नटखट और चंचलता का है फिर वह लज्जाशील री के रूप में भी दरसाई गई है। सूबेदार हजारासिंह से विवाह हो जाने पर एक पतिपरायणा नारी और ममतामयी माता के रूप मे सामने आती है। वह सिंह से अपने पति और पुत्र की प्राणरक्षा की भिक्षा मांगती है। प्रेम और व्य का निर्वाह भारतीय नारी का सदा से आदर्श रहा है। लेखक ने सूबेदारनी रित्र में भारतीय नारी का यह आदर्श उदात्त रूप में प्रकट किया है। सूबेदार रासिंह एक वीर, उदार, स्नेही और साहसी व्यक्ति के रूप में और वजीरासिंह विदूषक और बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। कहानी के अन्तिम मे लहना के 'कौन भाई कीरतसिंह' का उत्तर 'हां' कहकर वजीरासिंह ने ा की कल्पना को सजीव बनाये रखा और उसके भावों को ठेस नहीं लगने दी। प्रकार प्रस्तुत कहानी मे प्रत्येक पात्र का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, जो कि भाविक रूप से घटना क्रम में पड़कर उभरता और विकसित होता गया है। त्र चित्रण की दृष्टि से यह एक अत्यन्त श्रेष्ठ कहानी है।

देशकाल और वातावरण की दृष्टि से भी 'उसने कहा था' एक श्रेष्ठ कहानी कहानी के प्रारम्भ मे ही लेखक ने अमृतसर के बाजार का सजीव चित्र प्रस्तुत ा है। अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की विशेताएं तथा ग्राहक का सेरभर गीले ड़ों की गड्डी को गिने बिना न हटना लेखक के सूक्ष्म निरीक्षण के द्योतक हैं। द के सम्पूर्ण वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में लेखक को पूर्ण सफलता त हुई है। युध्द स्थल का एक एक दृश्य अपने वास्तविक रूप में हमारे नेत्रों के मने आ उपस्थित होता है। 'सैनिकों का कनस्तरों पर सोना', युध्द की सीलन ी खाइयां' और 'मन मन भर फांस की मिट्टी का बूटों मे चिपकना' आदि युद्ध स का चित्र आंखो के सामने लादेते हैं। युद्ध से अवकाश मिलने पर सैनिकों का ा गाना गाना और फिरंगी मेम की बात आदि सिपाहियों की मनोवृत्ति के ायक है। साथ ही पजाबी सिखो की सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक जीवन सम्बन्ध मे अनेक बातें इस कहानी को पढ़ने पर ज्ञात होती हैं। उदाहरणार्थ सिखो सिगरेट न पीना, दही से केश धोना आदि लेखक की पैनी दृष्टि के परिचायक हैं।

कथोप कथन की सफलता इस बात मे है कि वह पात्रों के चरित्र विकास अपना योगदान दे। प्रस्तुत कहानी में कथोप कथन इस दृष्टि से अपना विशेष महत्व ता है। बालक लहनासिंह और बालिका का वार्तालाप दोनों की मनःस्थिति ौर चपलता को प्रकट करता है। पात्रो के सम्वादों में रोचकता, स्वाभाविकता, ... सक्षिप्तता है। युध्द स्थल के दृश्य भी प्रस्तुत करने मे कथोप कथन

भी सहायक हुआ है, जिसने युध्द के दृश्यों को अत्यन्त स्वाभाविक एवं सजीव रूप मे प्रस्तुत कर दिया है। जर्मन सैनिक के षड्यंत्र का भण्डाफोड़ करने मे एवं लहना की चतुराई और प्रति-उत्पन्न-मति को प्रकट करने में संक्षिप्त एवं रोचक संवाद बड़े सहायक हुए हैं। पंजाब प्रदेश मे नित्य प्रयुक्त होने वाले शब्दो का प्रयोग लेखक ने पात्रों से खुल कर करवाया है—कुड़माई, घुमा, खोता, सोहरा, लाडी होरा आदि शब्दों का प्रयोग कहानी की रोचकता को बढ़ाने में योगदान देते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी और जर्मन भाषा के शब्दों के कतिपय प्रयोग पात्रों की सजीवता और स्वाभाविकता को प्रकट करने के अतिरिक्त कथोप-कथन में यथार्थता का बोध कराते हैं।

प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य मानव चरित्र विश्लेषण करना है। वास्तव मे लहनासिंह का विलक्षण एवं आदर्श चरित्र प्रस्तुत करना ही इस कहानी का उद्देश्य प्रतीत होता है। विभिन्न परिस्थितियों मे डालकर लेखक ने लहनासिंह के चरित्र को निखारा है, कर्त्तव्य और प्रेम के बीच उसका चरित्र विकसित होता है। लहना एक आदर्श प्रेमी, कर्त्तव्य निष्ठ, साहसी एवं वीर पुरुष है, जो कर्त्तव्य और प्रेम की बलिवेदी पर अपने प्राण को उत्सर्ग कर देता है। भारतीय प्रेम की श्रेष्ठता इसी में निहित है कि प्रेमी निर्लिप्त भाव से प्रेम के लिए अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर देता है, किन्तु कर्तव्य पथ से विचलित नहीं होता। आचार्य शुक्लजी के शब्दो मे "इसके भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झांक रहा है, हाँ केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है।" यह एक ऐसे आदर्श प्रेमी की कहानी है जिसने निष्काम प्रेम के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया तथा विलक्षण रीति से अपने कर्तव्य का भी पूर्णरूप से पालन किया।

'उसने कहा था' कहानी की रचना गुलेरीजी ने अपनी मधुर एव प्रौढ़ शैली द्वारा की है। रोचकता एवं प्रसाद गुण से परिपूर्ण लेखक का रचना कौशल प्रस्तुत कहानी मे अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त है। लेखक कहानी का प्रारम्भ अमृतसर के इक्के-तांगेवालों के सजीव वर्णन से करता है जो अत्यन्त आकर्षक बनपड़ा है। कहानी के मध्यभाग मे युद्ध का एक एक दृश्य एवं घटनाएँ इतनी स्वाभाविकता एव सजीवता लिए हुए हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे लेखक स्वय लहनासिंह की रेजीमेंट के सैनिकों मे से एक रहा हो और सारी घटनाएँ अपनी आँखों से उसने देखी हों। कहते हैं मृत्यु और युद्ध बिना मरे या लड़े अनुभव करने की वस्तु नहीं, केवल कल्पना के आधार पर इनका सच्चा चित्र प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन होता है। किन्तु पता नहीं इस कहानी के प्रणेता ने युद्ध और मृत्यु का इतना सजीव एव जीवन्त चित्र कैसे प्रस्तुत किया है। बीच बीच में व्यंग्यात्मक छोटे कहानी को

रोचकता में चार चाँद लगा देते हैं। मनोविश्लेषण से युक्त इस कहानी का अन्त नाटकीय सौंदर्य लिए हुए है। लेखक जीवन की गुत्थी को धीरे-धीरे खोलता है और उसका पूर्ण अवगुण्ठन कहानी के अन्तिम स्पर्श में जाकर होता है। कहानी का दुखद अवसान पाठक को भी कुछ क्षणों के लिए करुणा एवं विषाद की भावना से आप्लावित कर देता है। इसी रस दशा तक पाठक को पहुँचा देना प्रस्तुत कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है जो कि इस कहानी की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण है। यह कहानी पाठक के हृदय में संवेदना को जागृत कर उसकी भावनाओं का परिष्कार करने में योग दान देती है।

प्रस्तुत कहानी की भाषा रोचक, ओजपूर्ण एवं प्रवाहमयी है। उर्दू, हिन्दी एवं पंजाबी मिश्रित मुहावरेदार भाषा की सुन्दर छटा सम्पूर्ण कहानी में पाई जाती है। कहानी की भाषा सुरुचिपूर्ण, भावानुकूल एवं पात्रानुकूल है। पंजाब प्रदेश में नित्य प्रति बोले जाने वाले शब्दों का प्रयोग तथा अंग्रेजी तथा जर्मन भाषा के कतिपय शब्दों का प्रयोग पात्रानुकूल होने के कारण कहानी की सजीवता और रोचकता में अभिवृद्धि करता है। भाषा की इस विशिष्टता के कारण ही पात्रों का सहज एवं स्वाभाविक रूप सामने आया है। वास्तव में भाषा सौष्ठव के कारण ही प्रस्तुत कहानी इतनी आकर्षक एवं रुचिकर बनगई है कि कहानी का एक एक शब्द हृदय को पकड़ता सा जान पड़ता है।

इस प्रकार कहानी के तत्वों की दृष्टि से 'उसने कहा था, एक सफल एवं श्रेष्ठ कहानी है। कहानी की संरचना का नाटकीय ढंग, घटना क्रम का कुशल विन्यास, चरित्र की उदात्तता एवं रसपूर्ण दृष्टि प्रस्तुत कहानी को अत्यन्त उच्च-कोटि का बना देती है। यह कहानी हिन्दी की सर्व श्रेष्ठ कहानियों में से एक है तथा विश्व कथा साहित्य में भी उचित स्थान पाने योग्य है।

---

१५ युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। आधुनिक हिन्दी गद्य के वे प्रवर्त्तक हैं। यों तो हिन्दी-साहित्य की धारा एक सहस्र वर्षों से प्रवाहित थी, किन्तु भारतेन्दु के व्यक्तित्व ने साहित्य की इस धारा को जो आधुनिक नूतन स्वरूप प्रदान किया वह अभूतपूर्व था। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी-साहित्य की धारा पद्य की सीमित एवं एकांगी दिशा में ही उन्मुख थी। भारतेन्दु की बहुमुखी प्रतिभा का संसर्ग प्राप्त कर वह साहित्य की धारा अनेक-मुखी हो नाटक, निबन्ध, आख्यायिका तथा समालोचना आदि गद्य कि विविध विधाओं के रूप में फूट पड़ी। साहित्य के विविध अंगों को युगानुकूल नव चेतना सम्पन्न कर, उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नया मोड़ दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हिन्दी साहित्याकाश में एक प्रतिभा सम्पन्न प्रकाश पिण्ड के रूप में हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माण में जितना योगदान भारतेन्दु ने दिया, वह उन्हें युगप्रवर्तक साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित कराने में समर्थ्य है।

भारतेन्दु एक सच्चे प्रगतिशील कलाकार थे। देश के लिये जो भी बातें उन्हें हितकर अथवा श्रेयस्कर प्रतीत हुईं, उन नूतन विचार-धाराओं को उन्होंने ग्रहण किया। तत्कालीन अंग्रेजी साहित्य एवं संस्कृति के प्रभाव को उन्होंने युगानुकूल अपनी विवेकशीलता से देशहित की दृष्टि से ग्राह्य समझा। पाश्चात्य साहित्य में जो भी तत्व उन्हें उपादेय प्रतीत हुए उन्हें निःसंकोच भाव से उन्होंने स्वीकार किया। देश में प्रचलित पुरानी सड़ी गली मान्यताओं एवं रूढ़ियों का उन्होंने विरोध किया। वे आधुनिककाल के एक ऐसे समन्वयवादी, युगप्रवर्तक साहित्यकार थे, जिन्होंने तत्कालीन लेखकों एवं कवियों का उचित मार्ग दर्शन कर उनके साहित्य को नई दिशा प्रदान की, वे तत्कालीन साहित्यकारों के केन्द्र-बिन्दु एवं प्रेरणास्रोत थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे—क्या काव्य, क्या नाटक, क्या निबंध, क्या समालोचना और क्या पत्रकारिता सभी क्षेत्रों में उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा क्रांति उत्पन्न की

तथा हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों को समृद्ध बनाया। भारतेन्दु ने अपने जीवन की अल्पावधि में जिस प्रकार एवं गुणानुकूल पुस्तकों का परिचय दिया वह अद्वितीय है।

जिस समय भारतेन्दु का जन्म हुआ देश में भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य अंग्रेजी संस्कृति में संघर्ष चल रहा था। उन्होंने देखा कि भारत में पश्चिमी विचारों एवं नवीन शिक्षा का प्रचार तो होरहा है, किन्तु हिन्दी साहित्य नूतन चेतना से रहित, नवीन दृष्टिकोण एवं नये विचारों के प्रति मूक है। देश की दयनीय स्थिति एवं हीनावस्था को देखकर उनकी आत्मा तिलमिला उठी तथा देश प्रेम की भावनायें हृदय में खटखटाने लगी। देशप्रेम, समाज सुधार तथा देश के नव निर्माण की तीव्र उत्कण्ठा उनके मानस में जागृत हुई। इन्हीं उदात्त भावनाओं से अनुप्राणित हो भारतेन्दु की वाणी काव्य, नाटक और निबन्ध के रूप में मुखरित हुई।

सन् १८५७ के गदर के ठीक सात वर्ष पूर्व ९ सितम्बर, १८५० ई. को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्यकुल में ऋषिपंचमी को हुआ था। ऋषि-पंचमी को वैदिक और जैन दोनों ही अत्यन्त पवित्र दिवस मानते हैं। 'कुछ आप बीती और कुछ जगबीती' शीर्षक अपनी आत्म कहानी में श्री भारतेन्दु ने स्वयं लिखा है—"मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन तथा वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है।" इनके पिताजी का नाम गोपालचन्द्र *(उपनाम गिरधरदास)* था तथा माता पार्वतीदेवी थीं। भारतेन्दु इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंशज थे। सेठ अमीचन्द सिराजुद्दौला के समकालीन थे। अमीचन्द ने तत्कालीन राजनैतिक उथल-पुथल में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भारतेन्दुजी सेठ अमीचन्द के प्रपौत्र (Grand-grand son) थे। जब हरिश्चन्द्र केवल पांच वर्ष के थे, इनकी माता की मृत्यु होगई थी तथा जब वे केवल दस वर्ष के थे इनके पिता का स्वर्गवास होगया था। इस प्रकार केवल दस वर्ष की अल्पायु में ही वे माता-पिता विहीन होगये थे। तेरह वर्ष की अवस्था में मन्नादेवी से इनका विवाह होगया था।

माता-पिता की सुखद छत्र छाया से बाल्यकाल में वंचित होने के कारण हरिश्चन्द्र की शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं होसकी। अधिकतर इनकी शिक्षा घर पर ही हुई। यद्यपि दो-तीन वर्षों तक इन्होंने बनारस के क्वीन्स कालेज में भी अध्ययन किया, किन्तु यह क्रम अधिक नहीं चला। घर पर ही उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त देश की अनेक प्रांतीय-भाषाओं बंगला, मराठी तथा गुजराती आदि का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। वे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, अतः अधिकतर

परिस्थितियाँ उनकी प्रगति में व्यवधान नहीं बन सकीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र केवल सवा चौंतीस वर्ष जीवित रहे तथा ६ जनवरी, १८८५ को उनका स्वर्गवास होगया था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ३४ वर्ष की अल्पायु में ही जितना महान कार्य किया तथा जिस प्रचुर मात्रा में साहित्य सृजन किया वह अभूतपूर्व है। उन्होंने लगभग १५० ग्रन्थों की रचना की, जिनमें १७ नाटक, ६० काव्य-ग्रंथ, १४ इतिहास विषयक पुस्तकें, १६ धर्म-ग्रंथ तथा १७ फुटकर ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त आपने अनेक निबन्ध लिखे हैं, जिनमें से बहुतों की खोज होना अभी शेष है।

भारतेन्दु के पिता श्रीगिरधरदास स्वयं अपने समय के एक प्रतिभाशाली कवि एवं नाटककार थे। उन्होंने ब्रज भाषा में अनेक कविताएँ लिखी,थीं तथा 'नहुष' नाटक की रचना की। श्री गिरधरदास द्वारा रचित 'नहुष' नाटक हिन्दी का प्रथम नाटक माना जाता है। भारतेन्दु को जन्म से ही साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ था तथा संस्कार रूप में काव्यकला, नाट्यकला तथा दानशीलता आदि प्राप्त हुई थी। कहते हैं कि केवल सात वर्ष की अवस्था में ही हरिश्चन्द्र ने अपनी कवि प्रतिभा का परिचय दिया था और निम्नलिखित छंद लिखा था:—

"लै ब्योढ़ा ठाढ़े भये श्री अनुरुद्ध सुजान।
बानासुर की–सैन को हनन लगे भगवान॥"

भारतेन्दु के प्रादुर्भाव काल तक मध्यकालीन सामन्तवादी दरबारी कविता का ही हिन्दी में प्रचलन था। कविताएँ ब्रजभाषा में ही लिखी जाती थीं। प्रारम्भ में भारतेन्दु ने भी अपनी कविताएँ ब्रजभाषा में ही लिखी, जिनमें शृंगार रस की प्रधानता है। किन्तु बाद में उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि भावों की अभिव्यक्ति के लिए तत्कालीन देश की मानसिक-स्थिति के अनुरूप खड़ी-बोली ही उपयुक्त माध्यम है। अत: उत्तरवर्तीकाल में उन्होंने खड़ीबोली में भी अनेक रचनाएँ लिखीं। गद्य रचना की भाषा तो खड़ीबोली स्वीकार हो चुकी थी। भारतेन्दु की काव्य कृतियाँ हैं–'होली,' 'मधुमुकुल', 'प्रेम फुलवारी', 'प्रेमप्रलाप', 'सतसई शृंगार', 'भारतवीणा' तथा 'सुमनाञ्जलि' आदि।

सन् १८५७ की क्रान्ति का अंग्रेजी शासन ने बर्बरता-पूर्वक दमन किया था, अत: जनता आतंकित थी तथा राष्ट्रीय चेतना सुषुप्तावस्था में थी। राष्ट्रीय चेतना को पुनर्जागृत करने की आवश्यकता थी। मां भारती के इस सपूत (श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) ने देश की जनता में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना ही अपना प्रधान लक्ष्य बनाया था। जन-जन में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने हेतु तत्पर हो उन्होंने योजनाबद्ध कार्य किया। उनका कथन था—"जातीय संगीत की

छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश में, गांव गांव में साधारण भाषा में बनें, वरंच सरकारी भाषा में और विदेशों की भाषा में विदित हों।" उनकी अनेक रचनाएं देशप्रेम तथा समाज सुधार सम्बन्धी हैं। देश की दुर्दशा पर उन्होंने 'भारत दुर्दशा' नाटक में आंसू बहाये हैं। लगता है भारतेन्दु अंग्रेजी शासन व्यवस्था से प्रभावित थे। उन देशभक्ति के साथ साथ राजभक्ति भी उनमें पाई जाती है। जब 'ड्यूक ऑफ एडिनबरा' भारत में आये थे, तब उन्होंने श्री राजकुमार सुस्वागत-पत्र' की रचना की थी। किन्तु अंग्रेजों द्वारा भारत का धन अपने देश लेजाना उन्हें सहन नहीं हुआ, अतः उन्होंने अपना आक्रोश प्रकट किया—

"अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी॥"

भारतेन्दु के समस्त काव्य को चार भागों में विभक्त किया जासकता है—भक्ति सम्बन्धी कविताएं, राष्ट्रप्रेम सम्बन्धी कविताएं, शृंगार सम्बन्धी कविताएं तथा समाज सुधार सम्बन्धी कविताएं। उनकी भक्तिपरक रचनाएं वल्लभ पुष्टि-मार्गीय कृष्णभक्तों की श्रेणी में रखी जासकती हैं। उनकी शृंगार सम्बन्धी रचनाएं कहीं कहीं रसखान और घनानन्द की विरह वेदना से भी आगे बढ़जाती हैं। मृत्यु के पश्चात् आंखों का खुला रहना एक स्वाभाविक बात है, पर भारतेन्दु की गोपियां आंखों का खुला रहना कृष्ण-दर्शन लालसा का परिणाम समझती हैं:—

"इन दुखियान को न सुख सपनेहु मिल्यो,
यों ही सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी।
× × ×
बिना प्राण प्यारे भये दरस तिहारे हाय,
देखि लीजो आँखें ये खुली ही रहि जायँगी।"

भारतेन्दु का काल प्राचीन एवं नवीन युग का सन्धिकाल था। अतीत की परम्पराएं लड़खड़ा रही थीं और नवीन समस्याएं जन्म लेरही थीं। भारतेन्दु ने देश की इन्हीं विभिन्न समस्याओं को अपने नाटकों 'भारत दुर्दशा' तथा 'अंधेरनगरी' आदि में चित्रित किया है। अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजी भाषा का तिरस्कार करना बड़े साहस का कार्य था। किन्तु भारतेन्दु ने निर्भीकता पूर्वक अपनी मातृभाषा के प्रति अपने हृदयोदगार प्रकट किये:—

अंग्रेजी पढ़िके जदपि
सबगुण होत प्रवीण,

पै निज भाषा ज्ञान
बिन रहत हीन के हीन।"

हिन्दी गद्य की रचना करने वाले चार प्रारंभिक साहित्यकार मुन्शी सदासुखलाल, लल्लूलाल, सदल मिश्र और इंशाअल्ला खाँ माने जाते हैं, किन्तु वास्तव मे इन चारों ने गद्य के नमूने मात्र प्रस्तुत किये। हिन्दी गद्य की परम्परा को प्रतिष्ठित करने का श्रेय इनमें से किसी को भी प्रदान नहीं किया जासकता। इनके अतिरिक्त राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द' तथा राजा लक्ष्मणसिंह ने अपने-अपने ढ़ंग से हिंदी गद्य के स्वरूप को स्थिर करने का प्रयास किया था। शिवप्रसादजी की अरबीफारसी मिश्रित ठेठ हिन्दी जिसे उन्होने 'आमफहम' की सज्ञादी ('राजाभोज का सपना' तथा 'वीरसिंह का वृत्तान्त') प्रतिष्ठित नहीं होसकी और राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत गर्भित आगरा की ठेठ हिन्दी, जिसका रूप उनकी अनूदित कृति 'अभिज्ञान शकुन्तला' नाटक मे देखा जासकता है, जनता मे प्रचलित नही हो सकी। वास्तव मे भारतेन्दु ने ही हिन्दी गद्य की भाषा को सुव्यवस्थित कर स्थिरता प्रदान की और उन्हें ही हिन्दी गद्य की परम्परा का सूत्रपात कर उसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रदान किया जासकता है। भारतेन्दु न तो फारसी-अरबी के शब्दों से बोझिल हिन्दी के समर्थक थे और न संस्कृत-गर्भित हिन्दी के ही पक्षधर थे। उन्होंने बोल चाल की भाषा को गद्य-रचना के लिए अपनाया। उन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत और उर्दू के उन्हीं शब्दो को स्थान दिया जो कि जनवाणी एवं मानस मे प्रतिष्ठित हो घुल-मिल गये थे। भाषा की दृष्टि से उन्होंने मध्य-मार्ग का अनुगमन किया तथा हिन्दी गद्य में नव प्राणप्रतिष्ठा कर, उसे स्थिरता प्रदान की।

भारतेन्दु को हिन्दी के निबन्धो एवं नाटको का प्रवर्तक भी माना जाता है। कवि बचन सुधा', 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' तथा 'बालाबोधिनी' आदि पत्रिकाओं मे आपने विविध विषयों पर अनेक निबन्ध लिखे तथा तत्कालीन निबंधकारों का मार्गदर्शन किया। नाटको के क्षेत्र मे उनका योगदान अभूतपूर्व है। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में नाटकों का नितान्त अभाव था। उनसे पूर्व गिरधरदासकृत 'नहुष' तथा विश्वनाथसिंह द्वारा रचित 'आनंद रघुनन्दन' ये केवल दो नाटक लिखेगये थे, जबकि बँगला भाषा मे अनेक नाटकों की रचना होचुकी थी। भारतेन्दु ने संस्कृत और बँगला के नाटकों से प्रेरणा अवश्य ली, किन्तु अपनी नाट्यकला का विकास स्वतंत्र रूप से किया। अपने नाटकों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज का जीवन दर्शन उन्होने प्रस्तुत किया। हिन्दी के नटकों का क्रमबद्ध विकास भारतेन्दु के नाटकों से ही हुआ है। उन्होंने स्वयं अनेक नाटकों के अनुवाद किये तथा मौलिक नाटको की रचना की। 'विद्यासुन्दर', मुद्रा राक्षस', 'भारत जननी', सत्यहरिश्चन्द्र'

ली', 'धनंजय विजय' तथा 'दुर्लभबंधु' आदि आपके अनूदित नाटक हैं। न्दु द्वारा रचित मौलिक नाटक हैं—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेमयोगिनी', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी' और 'चन्द्रावली' आदि। भारतेन्दु के नाटकों के कों एवं पात्रों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उनके नाटकों के कथानक एवं पात्र प्रकार के हैं—ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक तथा तत्कालीन जीवन धी।

हिन्दी साहित्य मे आलोचना साहित्य का प्रादुर्भाव भारतेन्दु-काल से ही हुआ प्राचीनकाल में आलोचनाएँ केवल सूक्त वाक्य अथवा उक्तियों के रूप में ही जाती थीं। लेखक की कृति का उचित मूल्याङ्कन, विवेचन एवं परीक्षण नहीं जाता था। भारतेन्दु काल में जब से हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होना म हुईं, तभी से आलोचना का सूत्रपात हुआ। सर्वप्रथम भारतेन्दु काल मे पं० कृष्ण भट्ट ने 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में श्री निवासदास कृत 'संयोगिता-वर' की आलोचना लिखी थी। इसके पश्चात बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ी अनेक पुस्तकों की आलोचनाएँ प्रस्तुत की। जहाँ तक समालोचना का सम्बन्ध ारतेन्दु का कार्य साहित्य के अन्य क्षेत्रों मे किये गये कार्य की अपेक्षा न्यून है, तु अपने समय के अन्य समालोचकों के वे प्रेरणा-स्रोत थे। भारतेन्दु की समा-चना का रूप उनके 'नाटक' शीर्षक निबन्ध मे उभरा है। वास्तव में भारतेन्दु की लोचना प्रतिभा उनके निबन्धों में ही प्रकट हुई है, जिसके द्वारा उनके समा-चनात्मक दृष्टिकोण का स्पष्ट रूप से आभास मिलता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य के परिष्कार एवं निर्माण मे ही योगदान ीं दिया, वरन उसके प्रचार एवं प्रसार के लिये भी महान् कार्य किया। एक ल साहित्यकार होने के साथ ही वे एक सफल संपादक एवं पत्रकार भी थे। ल साहित्यकार होने के साथ ही वे एक सफल संपादक एवं पत्रकार भी थे। न्दी में सर्वप्रथम पत्रिकाएँ उन्हीं के कुशल संचालन एवं योग्यतापूर्ण सम्पादन मे कलीं। 'कवि वचन सुधा' (१८६९ ई. मे) तथा 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' (१८७३ ई. में) रतेन्दु द्वारा संचालित एवं सम्पादित की गई थीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने ाला बोधिनी' पत्रिका स्त्रियों के लिये प्रकाशित की, जिसमें स्त्रियोचित लेख ाशित होते थे। उन्होंने अपने समय के कितने ही लेखकों को प्रेरणा प्रदान कर न्दी की सेवा में प्रवृत्त किया। भारतेन्दु ने गद्य और पद्य मे अनेक नूतन शैलियों सफल प्रयोग एवं प्रवर्त्तन किया, जिसका अनुसरण उनके समकालीन एवं उत्तर-र्ती साहित्यकारों ने किया। मौलिक एवं अनूदित नाट्य रचना करने के अतिरिक्त ारतेन्दु ने हिन्दी रंगमंच की भी स्थापना की थी। वे स्वयं अपने नाटकों में अभिनय ं निर्देशन करते थे।

भारतेन्दु ने अपने पूर्वजों से विरासत में तीन वस्तुएं प्राप्त की थी—धन, कुलप्रतिष्ठा तथा साहित्यिक अभिरुचि। अतः प्रारम्भ से ही उनके जीवन में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्रमुखरूप से दीखपड़ती हैं—धन के प्रति उपेक्षा भाव, कुल-गौरव के प्रति अनुराग तथा साहित्य रचना के प्रति सहज रूझान। भारतेन्दु के हृदय मे प्रारम्भ से ही धार्मिक-रूढ़ियो एव सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह एवं क्रान्ति की तीव्र भावनाएं उत्पन्न होचुकी थीं, जो आगे चलकर जर्जर सामाजिक एवं धार्मिक विश्वासों के लिये घातक सिद्ध हुईं।

भारतेन्दु देश की सभी प्रान्तीय (प्रादेशिक) भाषाओं की उन्नति के प्रबल समर्थक थे। देश की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार था। उन्होंने स्वयं बँगला, गुजराती तथा मराठी आदि प्रादेशिक भाषाएं सीखी थीं तथा बँगला के कुछ नाटकों (विद्या सुन्दर, सत्य हरिश्चन्द्र तथा भारत-जननी) के अनुवाद हिन्दी मे किये थे। उनका कथन था—"इस समय समूचे देश को जाग्रत करने की आवश्यकता है। अतः सभी प्रान्तीय भाषाओं मे नई चेतना के गीतों एव निबन्धों आदि की रचना कर जनता में उनका प्रचार करना चाहिए।" उनकी यह अभिलाषा थी कि नव-जन-जागरण से सम्पूर्ण देश अनुप्राणित हो जावे। उन्होंने अपनी भाषा की उन्नति को ही समस्त उन्नतियो का मूल बतलाया है—

"निज भाषा उन्नति अहै
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के
मिटत न हिय को शूल।"

भारतेन्दु ने साहित्य को जन जन में नई चेतना भरने का सशक्त साधन बनाया था। उनके सम्पूर्ण साहित्य को हम धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण की नवीन चेतना का साहित्य कह सकते हैं। १५ वर्ष की अल्पायु से लेकर ३४ वर्ष की आयु तक (मृत्यु-पर्यन्त) उनके जीवन का प्रत्येक क्षण उन्होने देश के जीवन मे नई चेतना जाग्रत करने तथा देश के नव-निर्माण मे योगदान देने हेतु लगाया। उनका यह अभिमत था कि साहित्य जीवन के लिए है। जीवन-संघर्ष का चित्रण करना ही साहित्य का उद्देश्य है। जीवन से कटकर अलग होजाने पर साहित्य अपना महत्व खोदेता है। उनका समूचा साहित्य क्या कविता, क्या नाटक और क्या निबंध सभी तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों एवं वातावरणों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनके लगभग सभी नाटक देशप्रेम से परिपूर्ण, हिन्दू संस्कृति मे आस्था रखने वाले तथा समाज सुधार की भावनाओं से आप्लावित हैं। भारतेन्दु का यह दृढ़ विश्वास था कि वर्तमान देश की सामाजिक स्थिति मे

सुधार नहीं होगा देश की उन्नति होना असंभव है। विधवा-विवाह, मद्योद्धार त
स्त्रीशिक्षा के वे प्रबल समर्थक थे।

भारतेन्दु ने अनेक साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठनों की स्थाप
की थी जो प्रगतिशील एवं नूतन विचारों का प्रचार-प्रसार करते थे। इस कार्य हे
उन्होंने मुक्त-हस्त से अपनी पैतृक-सम्पत्ति का दान किया। वे जहाँ कहीं भी रूढ़ि
वादिता, कूपमण्डूकता एवं अप्रगतिशीलता को देखते थे, उसका विरोध करते थे तथ
अपनी लेखनी द्वारा उसपर कठोर प्रहार करते थे। रीतिकालीन सामन्तवादी विचार
धारा वाले, सुरा और सुन्दरी के मोह में उलझे हुए तत्कालीन साहित्यकारों क
अपनी सशक्त-वाणी द्वारा उन्होंने सचेत किया। देश की दुर्दशा की ओर देशवासिय
का ध्यान उन्होंने आकृष्ट किया और अपने अंतर का क्षोभ भी प्रकट किया:—

"आवहु सब मिलकर रोवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"

उन्होंने अपने एक अन्य नाटक 'भारत जननी' में देश की दयनीय दशा क
कारुणिक एवं मर्मभेदी चित्र अंकित किया है:—

"भयो घोर अँधियार चहूँ दिस ता महँ वदन छिपाये
निरलज परे खोइ आपुनपो जागतहु न जगाये।"

भारतेन्दु हिन्दी भाषा एवं साहित्य के महान् उन्नायक थे। उन्हीं की प्रेरणा
से उनके समकालीन साहित्यकारों का एक मंडल संगठित हुआ था। भारतेन्दु-मण्डल
के प्रमुख साहित्यकार थे—प० प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन',
राधाचरण गोस्वामी, प० बालकृष्ण भट्ट डा० जगमोहनसिंह, पं० अम्बिकादत्त व्यास,
पं० भीमसेन तथा काशीनाथ खत्री आदि। इन साहित्यकारों ने तत्कालीन देश की
जनता को जाग्रत करने मे बहुत बड़ा योगदान दिया। भारतेन्दु ने समय-समय पर
अनेक साहित्यिक गोष्ठियों का समायोजन किया, जिनमे तत्कालीन साहित्यकार भाग
लेते थे तथा विविध विषयों पर विचार विमर्श करते थे।

भारतेन्दु साहित्यकारों एवं कलाकारों का उचित सम्मान करते थे। वे
तन-मन-धन से उनकी सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। कहा जाता है
कि जब लखनऊ के नवाब वाजिदअलीशाह को अंग्रेजों ने बन्दी बनाकर कलकत्ता
भेजदिया था, तब उनके आश्रित रहने वाले एक प्रसिद्ध शायर मिर्जाआबिद की
आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय होगई थी। मिर्जाआबिद ने तब भारतेन्दुजी की
प्रशंसा में बाईस शेर लिखकर भेजे थे, इस पर प्रसन्न होकर भारतेन्दु ने मिर्जाआबिद
को प्रचुर पुरस्कार आर्थिक सहायता के रूप में प्रदान कर उन्हें आर्थिक सकट से

मुक्त किया था। वे कर्तव्य-परायण, सच्चरित्र, दानी एवं ईमानदार व्यक्ति थे। एक बार एक व्यक्ति ने भारतेन्दुजी को दो अशर्फियाँ कभी दी थीं, जो बाद में उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति के अत्यन्त शोचनीय होने पर भी अपनी कोठी गिरवी रखकर चुकाई थी। भारतेन्दु अत्यन्त उदार, गुणग्राहक, सरस एवं विनोदी स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी विपुल सम्पत्ति को खुले हाथों खर्च किया। साहित्यकारों की सहायतार्थ तथा हिन्दी के हित के लिये उन्होंने अपने धन को पानी की तरह बहाया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्हें आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा और वे क्षयरोग-ग्रस्त होगये थे, जिसने हिन्दी के इस महान् साहित्य-सेवी को ३४ वर्ष की अल्पायु में ही मृत्यु के द्वार पर पहुँचा दिया।

अंग्रेजी-शासन की स्थापना होजाने पर, देश की जनता एक नये प्रकार की पाश्चात्य संस्कृति से युक्त शासन व्यवस्था के सम्पर्क में आई। अत: देश के जीवन में उथल-पुथल उत्पन्न हुई तथा सभी क्षेत्रों में संक्रमण की स्थिति प्रकट हुई। भारतीय कुटीर उद्योगों के नष्ट होने से मध्य-युगीन सामन्ती व्यवस्था लड़खड़ाने लगी। पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता ने देश की जनता को चकाचौंध में डाल दिया था और वह उसकी तड़कभड़क से आकृष्ट हो उस ओर उन्मुख भी होने लगी थी। इधर अंग्रेज लोग देश की जनता को गुमराह कर भारत का धन अपने देश में पहुँचा रहे थे। इस प्रकार जब देश का आर्थिक शोषण हो रहा था, भारतेन्दु का प्रादुर्भाव हुआ था। किन्तु भारतेन्दु ने अपने समय की परिस्थितियों एवं वस्तुस्थिति को भली प्रकार समझा था और अपने निबन्धों एवं नाटकों में, विशेषरूप से 'भारत दुर्दशा' तथा 'भारत जननी' नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र अंकित किया। यद्यपि भारतेन्दु के साहित्य में देश-भक्ति और राज-भक्ति दोनों मिलती हैं किन्तु यह परिस्थिति जन्य था। इसे हम अप्रत्यक्ष देश-भक्ति भी कह सकते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न, क्रान्तिकारी साहित्यकार थे। इसके अतिरिक्त वे एक सच्चे समाज-सुधारक, देश के हितैषी एवं सांस्कृतिक नेता भी थे। केवल ३४ वर्ष की अल्पावस्था में उन्होंने देश, जाति, समाज एवं साहित्य की जो अपूर्व सेवा की वह उन्हें युग-प्रवर्त्तक साहित्यकार के पद पर प्रतिष्ठित कर देती है। उन्होंने राष्ट्र के नव-निर्माण के लिये इतना विशद् एवं महत्वपूर्ण कार्य किया कि वे युग-पुरुष कहलाने के सहजरूप से ही अधिकारी हैं। उनकी अनन्य साहित्य-सेवा एवं सार्वजनिक हित के कार्यों से प्रभावित होकर ही जनता-जनार्दन ने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया था।

१६ कहानी परंपरा और हिन्दी कहानी साहित्य

कहानी का जन्म कब और कैसे हुआ ? यह बतलाना अत्यन्त कठिन है। पर इस बात से कोई इनकार भी नहीं कर सकता कि किसी न किसी रूप में कहानी सृष्टि के आदि काल से चली आरही है। अतः कहानी का उद्‌भव मानव के साथ ही हुआ है। मनुष्य जीवन की प्रत्येक घटना अपने में एक कहानी है। अपनी बात दूसरे से कहना और दूसरे की बात सुनना, यह कहने और सुनने का व्यापार अनन्त काल से शाश्वत है और इसी में कहानी का उद्‌भव अन्तर्निहित है। अतएव हम कह सकते हैं कि कहानी का जन्म अनादि है और उसकी परम्परा मानव के उद्‌भव काल से जुड़ी होने के कारण अक्षुण्ण है। कहानी कला से परिचित न होते हुए भी दादी, नानी आदि घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के मुख से हम शैशव काल से ही अनेक राजा रानी की कहानियाँ सुनते चले आरहे हैं।

कहानी किसी व्यक्ति विशेष की न होकर सबकी है। प्रत्येक देश एवं जाति में इसका अस्तित्व पाया जाता है। कहानी साहित्य का इतिहास इस बात को बतलाता है कि प्रत्येक देश, जाति एवं समाज में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप कहानियों का उद्‌भव और विकास होता रहा है। बाल, किशोर, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध सभी की अपनी वयस के अनुसार कहानियाँ हैं इस प्रकार कहानी सम्पूर्ण मानव जीवन पर आच्छादित है और उसकी व्यापकता मानव मस्तिष्क एवं हृदय के विचारों एवं भावों की व्यापकता में समाहित है। अन्यान्य कलाएँ भी अपने क्रोड़ में अतीत की अगणित कहानियाँ अपने में समेटे हुए हैं। मूर्तिकला स्थापत्य कला, संगीत कला और चित्रकला आदि युग युग से अपने समय की कहानियाँ अनवरत कह रही हैं। किन्तु उन्हें सुनने समझने के लिए कानों की नहीं, अपितु आँखों की, मस्तिष्क की और की आवश्यकता है। अजन्ता, ऐलोरा की सजीव मूर्तियाँ, पिरेमिड, अनेक
 विजय स्तंभ और ताजमहल की मीनारें आज भी अतीत के गौरव,

समृद्धि एवं एकनिष्ठ प्रेम की कहानियाँ अपनी उत्कृष्ट कला के माध्यम से मौन रहकर भी कह रहे हैं।

भारतवर्ष के ही नहीं, अपितु विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में न जाने कितनी ही विभिन्न देवताओं की सूक्तों में स्तुति स्वरूप शिक्षाप्रद एवं मनोरंजक कहानियाँ भरी पड़ी हैं। वेदों के उत्तरवर्ती उपनिषद्, ब्राह्मण आदि संस्कृत के ग्रन्थों में अनेक कहानियाँ मिलती हैं। महाभारत तो कथा साहित्य का अक्षय भण्डार है। 'पंचतंत्र' की नीतिपरक एवं शिक्षाप्रद कहानियाँ कथा साहित्य में अद्वितीय हैं। 'वृहद् कथा मंजरी,' 'कथा सरित्सागर' तथा हितोपदेश' आदि ग्रंथ 'पंचतंत्र' के ही विविध संस्करण हैं। इनके अतिरिक्त 'वासवदत्ता', 'हर्षचरित्र' तथा 'कथा कौतुक' आदि अनेक कथा ग्रंथ संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होते हैं।

योरोप में लेटिन और ग्रीक कथा-साहित्य ने अन्यान्य योरोपीय देशों में कथा साहित्य को जन्म दिया। योरोप का प्रथम कहानीकार 'इसप' माना जाता है। भारतवर्ष में जिस प्रकार की नीतिपरक एवं उपदेशात्मक कहानियों की एक परम्परा पाई जाती है, ठीक इसी प्रकार ईसाइयों के प्रधान धर्म ग्रंथ 'Bible' के New Testament' तथा 'Old Testament' में दृष्टान्तों के रूप में कहानी कहने की प्रथा मिलती है। भारत में पुराण काल के पश्चात प्रचुर कथा साहित्य लिखा गया, जिनमें से 'हितोपदेश' 'कथा सरित्-सागर' एवं 'दशकुमार चरित्र' आदि संस्कृत के प्रसिद्ध कथा ग्रंथ हैं, जिनके संसार की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद किये जा चुके हैं।

चौदहवीं शताब्दी के बाद भारतीय कथा साहित्य की प्रगति रुक गई। जैन कथाकारों ने (हेमचन्द, मेरुतुंग आदि ने) प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में कुछ कथाएँ लिखी थीं। हिन्दी कहानियों का सूत्रपात संस्कृत कथा साहित्य के अनुवाद से हुआ। इसी समय योरोप के कथा साहित्य ने पर्याप्त उन्नति की। प्रारम्भ में कहानी का स्वरूप उनके यहाँ भी अविकसित रहा और उसे लघु उपन्यास की कोटि में रखा गया। उस समय उपन्यास और कहानी में केवल आकार का ही अन्तर माना जाता था। स्कॉट और डिकेन्स की कतिपय औपन्यासिक कृतियाँ आकार में छोटी होने के कारण आख्यायिका की कोटि में रखी गई थीं। किन्तु धीरे धीरे मानव का जीवन अधिक व्यस्त और जटिल हुआ और उसके साथ ही साहित्य के रूप में भी परिवर्तन हुआ, बड़े बड़े उपन्यासों का स्थान लघुकथा (कहानियों) ने ग्रहण किया। कहानी कला का स्वतन्त्र विकास हुआ। कहानी का आकार और सीमा भी निर्धारित की गई। पाश्चात्य देशों में कहानी के तत्वों की उद्भावना सर्व प्रथम अमेरिका में हुई। आधुनिक कहानी को जन्म देने और विकसित करने वाले एडगर एलिन पो

तथा बेहहाई मारे जाते हैं। विलियम के जो ने कहानी को उपन्यास से पृथक कर उसका स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया। बाद में फ्रांस और रूसी कहानियों ने बहुत उन्नति की।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वीरतापूर्ण एवं प्रेम सम्बन्धी गाथाएँ (कहानियाँ) मिलती हैं, जो पद्य और गद्य दोनों में लिखी गईं। 'रासो' ग्रन्थों की तो एक परम्परा पाई जाती है। पृथ्वीराज तथा आल्हा-ऊदल आदि शूरवीरों की गाथाएँ कथा-कहानियों के रूप में रचना की गईं जिनमें इनके शौर्य, प्रेम, न्याय बुद्धि आदि का अतिरंजित एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है। 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पच्चीसी' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। देशपर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित होजाने के पश्चात हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक भावों, कथाओं एवं संस्कृतियों का आदान-प्रदान हुआ। मध्यकाल में भारतवर्ष में ऊषा-अनिरुद्ध, नल-दमयन्ती, विक्रमादित्य और राजाभोज तथा राम और कृष्ण की (धार्मिक) कथा कहानियाँ प्रचलित थीं। इधर मुसलमान शीरीं-फरहाद, लैला-मजनू की प्रेम कहानियाँ लेकर आये। दोनों के सम्पर्क से प्रेम प्रधान कहानियों की रचना होने लगी और सूफी कवियों में प्रेमाख्यान लिखने की एक लम्बी परम्परा मिलती है। इन प्रेम-मार्गी सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों की रचना फारसी की मसनवी शैली में हिन्दू घरानों की जनप्रचलित कथाओं को लेकर की। इन आख्यानों में अस्वाभाविक, अतिरंजित एवं अप्राकृतिक प्रसंगों का भी समावेश किया। दूसरी ओर ब्रज प्रदेश में वैष्णवभक्तों की वार्ताएँ संकलित की गईं, जिनमें 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' और 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' प्रमुख हैं।

वास्तव में हिन्दी : आधुनिक काल में हिन्दी गद्य के विकास के साथ हिन्दी कहानी साहित्य का उद्भव एवं विकास हुआ। आधुनिक हिन्दी कहानी का इतिहास सत्तर पचहत्तर वर्षों का है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल गद्य काल के नाम से पुकारा जाता है। आधुनिक हिन्दी गद्य के साथ ही कहानी का भी उद्भव हुआ। गद्य साहित्य में कथा साहित्य का प्राधान्य है। गद्य की इन प्रारम्भिक रचनाओं में इंशाअल्ला खां, की 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी की प्रथम कहानी है। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का 'राजाभोज का सपना' तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' एवं इसके अतिरिक्त लल्लूलाल का 'प्रेम सागर', सदलमिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' और सदासुखलाल का 'सुख सागर' हिन्दी की प्रारम्भिक कृतियाँ हैं। किन्तु कहानी कला का इनमें अभाव है, अतः कहानी कहना उचित नहीं होगा। भारतेन्दु काल में हिन्दी कहानी कला का नहीं हुआ, इस काल में व्यंग्य की प्रधानता को लेकर बंगला गल्प का अनुकरण

अवश्य किया गया। पं० माधवप्रसाद मिश्र ने इस प्रकार की कहानियाँ 'सुदर्शन' में प्रकाशित की थीं।

हिन्दी कहानियों का शैशव काल भारतेन्दु काल और द्विवेदीकाल के सन्धिकाल से प्रारम्भ होता है। सन् १६०० में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। जुन सन् १६०० में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी प्रकाशित हुई। डा० श्रीकृष्णलाल 'इन्दुमती' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। किन्तु शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक की इस पर छाया होने के कारण इसकी मौलिकता सदिग्ध है। सन् १६०३ मे सरस्वती' में पं० रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' शीर्षक कहानी प्रकाशित हुई, इसी वर्ष वाजपेयीजी की 'पण्डित और पण्डितानी' कहानी भी प्रकाशित हुई थी। सन् १६०७ मे 'सरस्वती' में बगमहिला की 'दुलाई-वाली' कहानी प्रकाशित हुई। कहानी कला की दृष्टि से यह कहानी (दुलाईवाली) महत्वपूर्ण रचना है और कुछ विद्वान इसी को हिन्दी की प्रथम मौलिक श्रेष्ठ कहानी मानते हैं। सन् १६०६ में वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबंद भाई' प्रकाशित हुई और अगले ही वर्ष दो अन्य कहानियाँ 'तातार और एक वीर राजपूत' श्री वृन्दावन-लाल वर्मा की तथा दूसरी श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' भी सरस्वती मे प्रकाशित हुई। सन् १६१० तक का काल हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक काल कहा जा सकता है।

सन् १६११ में प्रसादजी की प्रेरणा से काशी से 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, यह हिन्दी के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। श्री जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन १६११ मे 'इन्दु' मे प्रकाशित हुई। इसी वर्ष जी. पी. श्रीवास्तव की प्रथम कहानी 'पिकनिक' भी छपी थी। गुलेरीजी की प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' 'भारतमित्र' में सन् १६११ मे प्रकाशित हुई। श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'रक्षाबन्धन' और 'राधिका' रमणप्रसादसिंह की 'कानों मे कगना' भी इसी काल में प्रकाशित हुई। वास्तव में सन् १६११ को, 'इन्दु' पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी में मौलिक एवं साहित्यिक कहानियों का विकास काल कहा जा सकता है। भारतवर्ष में अंग्रेजी शासन की स्थापना हो जाने के पश्चात पाश्चात्य साहित्य एवं संस्कृति के वैज्ञानिक दृष्टिकोण एव भौतिकवादी विचार धारा का बौद्धिक स्तर पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। हिन्दी के साहित्यकारों की विचारधारा में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

हिन्दी की कहानियों के प्रचार, प्रसार और विकास मे 'सरस्वती,' 'सुदर्शन' और 'इन्दु' इन तीन पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा। श्री चद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' सन् १६१५ में प्रकाशित हुई। प्रस्तुत कहानी

हिन्दी की सर्व श्रेष्ठ कहानियों में से एक है और आज भी उसकी प्रतिष्ठा यथावत है। सन १९१६ में प्रेमचन्दजी की प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया। सर्व प्रथम उन्होंने हिन्दी कहानी को वाह्य घटनाओं से मुक्तकर उच्चकोटि की मनोवैज्ञानिक कहानियाँ प्रदान की। मानव चरित्र का सूक्ष्म विश्लेषण कर उसके आन्तरिक रहस्यों का उद्घाटन करने में प्रेमचन्द को विशेष सफलता मिली। वास्तव में उन्होंने हिन्दी कहानियों को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया और अभूतपूर्व गौरव प्राप्त किया। उन्होने लगभग तीन सौ कलापूर्ण कहानियाँ और एक दर्जन उपन्यास लिखकर हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया। 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी', 'पंच परमेश्वर', 'दो बैलो की कथा', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'नशा', 'बड़े घर की बेटी,' 'नमक का दरोगा' तथा शंखनाद' आदि प्रेमचन्द की अत्यन्त ख्याति प्राप्त कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द की कहानियों के विषय एवं वस्तु व्यापक हैं। भारतीय जीवन के विविध पहलुओं, मानवमन के प्रेम-घृणा, ईर्षा, द्वेष तथा वैर-मैत्री आदि मनोविकारों का एवं समाज के विभिन्न चित्रों का सुन्दर अंकन उन्होंने अपनी कहानियों में किया है।

श्री जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी में भावप्रधान, आदर्शवादी, कर्त्तव्य और प्रेम के संघर्ष को लेकर अन्तर्द्वन्द्व प्रधान अनेक श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। 'आकाश दीप' 'पुरस्कार', 'ममता', 'देवदासी', 'बिसाती तथा 'सालवती' आदि प्रसादजी की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। प्रसाद की मधुआ' 'वेड़ी' और 'गुण्डा' यथार्थ जीवन पर लिखी गई कहानियाँ हैं। प्रसाद ने कुल सत्तर कहानियाँ लिखी है, उनमें से अनेक कहानियाँ अत्यन्त उच्चकोटि की कलात्मक एव साहित्यिक कहानियाँ हैं। हिन्दी कहानी के विकास में प्रेमचन्द और प्रसाद का योगदान अक्षुण्ण है। ये दोनो हिन्दी कथा साहित्य के ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने अपने मानदण्ड स्थापित किये जिसका अनुकरण अन्य तत्कालीन कहानीकारों की रचनाओं में भी हुआ। प्रसाद की कहानी शैली पर चण्डीप्रसाद हृदयेश, रायकृष्णदास तथा विनोदशंकर व्यास ने अनेक कहानियाँ लिखी। इसी प्रकार प्रेमचन्द की शैली का अनुवर्तन कौशिक, सुदर्शन और गोविन्दवल्लभ पंत आदि ने किया। विशेषरूप से प्रेमचन्द की कहानी परम्परा का प्रभाव नई कहानी पर भी परिलक्षित होता है। श्री जैनेन्द्र कुमार ने मनोविज्ञान विश्लेषण से युक्त अनेक मार्मिक कहानियाँ लिखी हैं। इनके अतिरिक्त भगवती प्रसाद वाजपेयी पहाड़ी, विनोद शंकर व्यास ने भी मानव जीवन के असाधारण पक्षों को लेकर मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। जैनेन्द्र कुमार की मनोवैज्ञानिक [illegible] में 'पाजेब', 'पत्नी', राजीव की भाभी' और 'चलचित्र' प्रमुख हैं।

हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ सामाजिक चेतना और

समाजवादी जीवन दर्शन का उन्मेष १९३६ ई. के बाद हुआ। यद्यपि इस प्रकार की कहानियाँ प्रेमचंद ने भी लिखी थी, जिसका उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। भगवती चरण वर्मा, यशपाल और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि ने सामाजिक जीवन दर्शन को लेकर कहानियाँ लिखी। श्रीमती महादेवी वर्मा की 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' तथा कमला चौधरी की 'साधना का उन्माद', 'पागल' और 'कर्कशा' सामाजिक चेतना के संदर्भ में सामान्य घरेलू जीवन को लेकर लिखी गई कहानियाँ हैं। इनके अतिरिक्त होमवती और सत्यवती मलिक ने भी इसी प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं। मानव मनोविज्ञान विश्लेषण को आधार बनाकर श्री अज्ञेय ने भी अनेक कहानियाँ लिखी हैं। अज्ञेय की 'अमर वल्लरी', 'मेजर चौधरी की वापसी', 'सिगनेलर', 'विपथगा', 'साँप' और 'कोठरी की बात' आदि उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। चंद्रगुप्त विद्यालंकार, भुवनेश्वर प्रसाद, कमलाकान्त वर्मा, सदगुरुशरण अवस्थी श्रीराम शर्मा तथा धन्यकुमार जैन आदि के नाम इस दिशा की कहानियों में उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंदोत्तर काल की हिन्दी कहानी रूस के कार्लमार्क्स की विचारधारा तथा फ्रायड के यौन-सिद्धान्त से भी प्रभावित हुई है। इलाचंद जोशी, अमृतलाल नागर, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर तथा राजेन्द्र यादव आदि की कहानियाँ इस पीढ़ी के कहानीकारों मे उल्लेखनीय है। यौन विकृतियों का चित्रण अज्ञेय, इलाचंद जोशी, पारसी प्रसाद सिंह तथा जैनेन्द्र आदि की कहानियों मे पाया जाता है। ऐतिहासिक कहानियों का विकास आचार्य चतुरसेन शास्त्री तथा वृन्दावनलाल वर्मा की कहानियों में हुआ। जी. पी. श्रीवास्तव का नाम हास्य प्रधान कहानीकारों में विशेष उल्लेखनीय है। उग्र ने प्राकृतवादी विलक्षण कहानियाँ लिखी। अज्ञेय ने प्रतीकात्मक कहानी का सूत्रपात किया, जिसका नए कहानीकारों ने पर्याप्त विकास किया। देश को स्वतन्त्रता प्राप्त होजाने के पश्चात हिन्दी कहानी मे परिवर्तन होने लगा था। यद्यपि इस काल की कहानी ने प्रेमचंद और यशपाल की समाजवादी जीवन दर्शन की जीवंत परम्परा से अपने को विलग नहीं किया, किन्तु विषय और शैली की दृष्टि से शिल्प विधान और अभिव्यंजना पद्धति मे पर्याप्त परिवर्तन कर नवीनता लाने का प्रयत्न किया है।

जिस प्रकार कुछ नये कवियो ने अधुनिकतम कविता को नई कविता या अकविता की संज्ञा दी है, इसी प्रकार कुछ नये कहानीकारों ने कहानी के क्षेत्र में नई कहानी का स्वर बुलन्द किया है। इन कहानीकारों का कहना है कि आज की नई कहानी में सब कुछ नया है तथा वे कहानी को नया मोड़ एवं नई दिशा प्रदान कर रहे हैं। इस नई कहानी की प्रमुख विशेषताएँ हैं—मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अन्तर्गत सैक्स की समस्या, हीनभावना, कुण्ठा का चित्रण, प्रोढ़सिकता, विघटन, विघटन

तथा प्रतीकात्मकता । नये कथ्य को नयी भावभंगिमाओं के साथ प्रकट करना भी आज की कहानी की एक विशेषता माना जाता है । अनछुए धरातल पर नये प्रयोग करने में आज का कहानीकार संलग्न है । नवीन कथ्य और नई भावभंगिमाओं द्वारा आज का कहानीकार निजी जीवन की अनुभूतियों को संप्रेषित करता है । अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी की नई कहानी नई, कविता की भांति विकास के नये क्षितिज खोज रही है । अनेक कहानीकार विविध प्रकार की कहानियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं–इनमें कमलेश्वर, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, शैलेश मटियानी, फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना राजेन्द्र यादव, राजेन्द्र सक्सेना तथा रमेश बक्षी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

आंचलिक कहानीकारों में फणीश्वर नाथ रेणु अग्रगण्य हैं । इनके अतिरिक्त शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह और लक्ष्मीनारायण के नाम भी उल्लेखनीय हैं । फणीश्वर नाथ रेणु की कहानियों में 'तीसरी कसम' अर्थात 'मारे गये गुलफाम' 'रसप्रिया' और 'लालपान की बेगम' ख्याति प्राप्त कहानियाँ हैं । नये कहानीकारों में कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव प्रमुख माने जाते हैं । इनमें कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'खोई हुई दिशाएं' और 'नीली झील', मोहन राकेश की 'जानवर और जानवर' 'एक और जिंदगी' तथा मिस पाल' तथा राजेन्द्र यादव की 'टूटना', 'प्रतीक्षा', और 'अभिमन्यु की मृत्यु' की श्रेष्ठ नई कहानियों में गणना की जाती है ।

धर्मवीर भारती और मन्नूभण्डारी की कहानियाँ समाज के प्रति नूतन संवेदना के स्वर को लिए हुए हैं । नई कविता की तरह नई कहानी में प्रतीकात्मकता एवं बिम्बविधान की प्रवृत्ति भी पाई जाती है । अज्ञेय की 'पठार का धीरज' मार्कण्डेय की 'तारों का गुच्छा' रमेश बक्षी की 'मेज पर टंगी कुहनियाँ' आदि इस दिशा की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं । अनेक कहानीकारों में व्यंग्य की प्रवृत्ति भी पाई जाती है—कमलेश्वर की 'दिल्ली में मौत' गिरधरगोपाल की 'सड़क का कुत्ता' और गोपाल उपाध्याय की 'धुंआ' व्यंग्यात्मक कहानियाँ हैं ।

आज की नई कहानी वैचारिकता, स्वानुभूति एवं आत्मचिंतन को अपने में समाहित किये हुए है । पैंसठोत्तरी नई कहानी का स्वर एवं संदर्भ तीव्रगति से बदल रहा है । मध्यवर्गीय समाज का अनुभूतिजन्य बिखराव, कुण्ठा, संशय एवं निराशा का स्वर आज की कहानी में मुखरित हो रहा है । आज की कहानी विशेष रूप से मध्य-
ं को केन्द्र बनाकर चल रही है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश के मध्यवर्ग की में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है । आज का कहानीकार मध्यवर्ग की अन्तश्चेतना

के प्रति जागरूक एवं संवेदनशील है। नई कहानी मध्यवर्ग की वास्तविक स्थिति एवं चिन्तना को अभिव्यजित करने की सशक्त विधा है।

आज की नई कहानी वर्तमान से चलकर भविष्यत् की सम्भावनाओं की खोज करने में गतिशील है। अतः युगबोध के साथ अतीत के अन्तराल मे पैठकर देखने की भी अपेक्षा है, तभी भविष्य की संभावनाओं को वर्तमान की कड़ी से जोड़ा जा सकता है। नई कहानी की प्रतिबद्धता एवं संदर्भ में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ है।

नई कहानी का रचना-शिल्प पूर्ववर्ती कहानी से भिन्न है। अपने कथ्य को नई कहानी का लेखक सरल से सरल और कठिन से कठिन 'फेंटेसी' जैसे जटिल माध्यम द्वारा भी अभिव्यक्त करता है। प्रतिकात्मता एवं जटिल रचना-शिल्प के कारण वह सर्वसामान्य व्यक्ति के लिये दुर्बोध है। अच्छा हो, यदि आज का हिन्दी-कहानीकार अकहानी के अधिक फेर में न पड़कर, रचनातंत्र की दृष्टि से सक्षम ढांचों का ही उपयोग करे तथा अपने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिये समकालीन जीवनदर्शन की दृष्टि एवं उसके सौंदर्यबोध में भी आस्था रखे।

आज नई कहानी विकास के नये आयाम खोज रही है। अतएव हमारी यही कामना है कि इसका क्षेत्र व्यापक एवं विशाल हो। किन्तु इधर कुछ कहानीकारों की कहानियां व्यक्ति सापेक्ष अधिक है। लगता है मानव के समग्र जीवन को लेकर वे नहीं चल रही हैं। आवश्यकता इस बात की है, आज की नई कविता और नई कहानी मानव मन की रुग्न कल्पनाएं, एकाकीपन की ऊब, कुण्ठाएं तथा यौन विकृतियों तक ही अपने आपको सीमित न रखकर आज समाज मे हो रहे सामाजिक, राजनैतिक एवं बौद्धिक स्तर के परिवर्तनो के परिप्रेक्ष्य मे जन कल्याणकारी एवं मानव विधायनी हो।

—